जीवन झांकी

श्री १००८ अवधूत स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज

ब्रहमानदं परम सुखदं केवल ज्ञानमुर्ति,
द्वन्द्वातीतं गगन सदृश तत्वमस्यादि लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचं सर्वधीसाक्षिभूत,
भावतीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरू तं नमामि ।।

प्रेरणाश्रोत श्री लाहौरी लाल जी

लेखक
बैधनाथ अग्निहोत्री

श्री १००८ अवधूत स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज

स्मृतिपट

स्व० पं० श्रीधर अवस्थी
स्व० श्री राजकुमार अवस्थी
स्व० श्री शिवकुमार अवस्थी
स्व० श्री कृष्णकुमार अवस्थी
स्व० श्री ओंकार नाथ अवस्थी
स्व० श्रीमती चन्द्रकली अवस्थी
स्व० श्रीमती मनोरमा दीक्षित
की
पुण्य स्मृति में

संरक्षक एवं प्रेरक :

श्री स्वामी केसर भारती जी

आमुख

अवधूत, श्रीमत्परमहंस, परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज वीतराग, ज्ञानी, योगी तथा परम विद्वान महापुरूष थे । उनमें अद्भुत आकर्षण, भक्त वत्सलता तथा ज्ञान-निष्ठा थी । ऐसे महान पुरूषों का जीवन कृतार्थ होता ही है । किन्तु उनका जीवन अन्य लोगों के उपकार के लिए होता है । जो उनमें अनन्य भक्ति करते है और उनमें मुखारविन्द के ज्ञानामृत का पान करते है, वह भी कृतकृत्य हो जाते हैं । ऐसे पावन पुरूषों के चरित्रों का पठन-पाठन और स्मरण करने से परम शान्ति मिलती है, अन्तःकरण निर्मल होता है। और जीवन में प्रेरणा मिलती है । परम शान्ति या मुक्ति ही तो मानव-जीवन का लक्ष्य है । इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह प्रयत्न है ।

प्रस्तुत पुस्तक "श्री स्वामी जी महाराज की जीवन-झाँकी" मे उनके चरित्रों की झलक मात्र है । इसका पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजन किया गया है । पूर्वार्द्ध में प्रथम सनातन धर्म के परम रहस्य का कथन है । सृष्टि, वेद, ईश्वर-कृपा, जीवन-कृपा, गुरू-कृपा, धर्म, भक्ति, ज्ञान तथा साधन का संक्षिप्त परिचय है । इसे अध्ययन करने पर शास्त्र तथा मानव जीवन का रहस्य ज्ञात हो जाता है । फिर श्री स्वामी जी महाराज के जन्म में गृहस्थ -जीवन की एक झलक है ।

उत्तरार्द्ध श्री स्वामी जी महाराज के सन्यास से आरम्भ होता है । इसमें सन्यास-परिचय, श्री स्वामी जी द्वारा लिखित ग्रन्थों की झलक और उनके अनेक विचित्र चरित्रों का वर्णन है । अन्त उनके महाप्रयाण से होता है ।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री का चयन इस प्रकार किया गया है, कि इसका सदैव महत्वपूर्ण स्थान रहे । जिनके अध्ययन से विद्वान भी प्रभावित हो और साधारणजन भी । प्रत्येक घटना का संकलन ऐसे पुरूषों के कथन पर आधारित हैं, जो प्रत्यक्षदर्शी है और जिनमें मिथ्या भाषण की कल्पना नहीं की जा सकती । हमारा अपना इसमें कुछ भी नहीं है । श्री स्वामी जी महाराज के चरित्रावगाहन में जो समय व्यतीत हुआ, वह धन्य है।

अन्त में इतना निवेदन है, कि जो भी सज्जन इसे श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नित्य अध्ययन करेंगे, निश्चय ही उन्हें भक्ति-ज्ञान तथा परम शक्ति का प्रसाद प्राप्त होगा ।

- बैधनाथ अग्निहोत्री

विषयानुक्रंमणिका

पूर्वार्द्ध

१. सृष्टि और परमकारण तत्व

२. ईश्वर-कृपा

३. अज्ञात ज्ञापक वेद

४. जीव-कृपा

५. गुरू-कृपा

६. श्रेष्ठ मानव

७. जन्म तथा विद्याध्ययन

८. गृहस्थ-जीवन

९. बम्बई का ज्योतिष का चमत्कार

१०. दो चक्रो का निर्माण

११. तीन ऋण और उनसे मुक्ति

उत्तरार्द्ध

१. सन्यासियों में दस नाम

२. चार प्रकार का सन्यास

३. सन्यास के तीन भेद

४. आरती

५. श्री स्वामी जी आयु तथा विद्वुत-सन्यास

६. मठाधीश-पद-अस्वीकार

७. जहानाबाद में

८. दिगम्बर फिर पालतू

९. कन्नौज में शास्त्रार्थ

१०. धराखोह में चमत्कार

११. पारसमणि-लीला

१२. जब रूपयों की वर्षा हुई

१३. मृत स्त्री जीवित हुई

१४. भाष्य और ग्रन्थ रचना
१५. अवच्छेद-अवच्छेदक
१६. जगत की रचना
१७. पितृमार्ग से गमनागमन तथा गर्भवास
१८. शास्त्र विरूद्ध नाम का विरोध
१९. श्री शाङ्कर साम्प्रादायान्तर्गत सरस्वती नाम में धूर्तता की कालिमा
२०. भोजन में चमत्कार
२१. शिवराजपुर में गंगा-पार
२२. सन्यास का अधिकारी ब्राहमण
२३. गोकुलचन्द्र-मिलन और गिन्नी चमत्कार
२४. 'आर्यसमाज' पर शास्त्रार्थ
२५. खुला चैलेन्ज
२६. श्री गान्धी जी से वार्ता और काँग्रेस प्रचार
२७. 'अतिवर्णाश्रमी' पद-प्राप्ति
२८. 'चित्कलो निषद्' की रचना
२९. आनन्द-दर्शन
३०. आत्मानन्दामृतघटम्
३१. जगत् कीप्रलयोत्पत्ति कैसे और कर्ता कौन ?
३२. चित्रकूट भ्रमण तथा विचित्र लीला
३३. सुवर्ण-निर्मात्री एक पत्ती
३४. सर्वात्म दृष्टि
३५. यमुना में जल-क्रीड़ा
३६. गुरू-कृपा का प्रत्यक्ष फल
३७. गोकुलचन्द्र का गृहत्याग और सदगुरू मिलन
३८. नारायण सेठ पर कृपा
३९. मकर मुख से उद्धार
४०. प्रतोद्वार
४१. 'अकबर राइयाँ' की यात्रा
४२. अन्नस्वल्प-भोजन अधिक

४३. सब समान ग्रामवासियों को दे दिया
४४. वर्षा तूफान से रक्षा
४५. परकार-प्रवेश में प्रमाण
४६. प्रसाद समान वितरण होना चाहिए
४७. एक रोगिणी पर कृपा
४८. अनेक रोगों की एक ही औषधि-वैद्यलीला
४९. अकबर राइयॉ से भावपूर्ण विदा
५०. आधुनिक ब्रजवाला
५१. गंगा जी का आकर्षण
५२. एक वैध के रूप में क्षय रोग निवारण
५३. हरिद्वार यात्रा में प्रोफेसर की माँ का रोग निवारण
५४. देश-विभाजन
५५. महाप्रयाण
५६. आरती

।। ॐ ।।

श्री स्वामी जी महाराज जी की जीवन झॉकी

पूर्वार्द्ध

सृष्टि और परम कारण तत्व

समस्त संसार की (मूल है- एक परम्, तत्व । वह अखण्ड, अनन्त, शुद्ध, बुद्ध, शुक्त मुक्त स्वरूप है, सद्धन, चिद्धन तथा आनन्दधन । वह परब्रम्ह, परमात्मा, ईश्वर, भगवान्, शिव, विष्णु, वासुदेव आदि नामों से शास्त्रों में कहा गया है। प्रलय में समस्त उसी में लीन होता है । और पुनः उसी से प्रकट होता है। वस्तुतः ब्रम्ह अपनी अनिर्वचनीय माया शक्ति द्वारा स्वंय विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते है। प्रथम महतत्व, अंहकार, पश्वतन्मात्रायें, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमिरूप पश्चमहाभूत की सृष्टि होती है। पंचमहाभूतों से चतुर्दश लोक-भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्यलोक ऊपर और अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल एवं महातल लोक नीचे उत्पन्न हो जाते हैं । पुनः पशु, पंक्षी, कीट, पतंग, देव, दानव, यक्ष, राक्षस आदि शरीरों की सृष्टि होती है । परमेश्वर को इतनी रचना से प्रसन्नता न हुई, तब मानव सृष्टि की । इससे उन्हें संतोष हुआ । 'श्री मद्भागवत' में कहा है : -

सृष्टवा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या, वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंषमत्स्यान् ।
तैस्तैरतुष्ट ह्रदयः पुरूषं विघाय, ब्रहमावलोकधिषणं मदुमाप देव ।।
लब्धवा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भावान्ते, मानुष्यमर्थदमनित्यमपीट्टधीरः ।
पूर्ण यतेन न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सवर्ततःस्यात ।।

"परब्रम्ह, परमेश्वर ने अपनी अनिर्वचनीय शक्ति माया से वृक्ष, सरीसृप (रेगने वाले जन्तु, पशु, पक्षी, डॉस तथा मछली आदि अनेक प्रकार की योनियों की रचना की है । किन्तु उन्हें संतोष न हुआ । तब उन्होंने मनुष्य शरीर की सृष्टि की । वह ऐसी बुद्व से सम्पन्न है, जिससे ब्रहम का साक्षात्कार कर सकता है । इसकी सृष्टि कर, वह अतीव प्रसन्न हुए । यद्यपि यह मनुष्य शरीर अनित्य है, क्योंकि मृत्यु सदैव इसके साथ लगी रहती है । तथापि इससे परम पुरूषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। इसलिए जन्मों के पश्चात् यह अतीय दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर बुद्धिमान पुरूष को चाहिए कि उद्देश्य मोक्ष ही है विषय-भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते है । अतः उनके संग्रह में यह अमुल्य जीवन नही खोना चाहिए ।

जैसे कुम्भकार घट, अश्व, हाथी, पुरूष, स्त्री बालक आदि मिट्टी से बनाता है किन्तु सभी होते है निष्प्राण । वैसे ही प्रथम सृष्टि, बनी, किन्तु, गतिरहित, ज्ञानशून्य तथा जीवन विहीन। तब तत्सृष्टवा तदेवानूप्राविशित् (तै०उ०२.६) "उस ब्रहम ने शरीरादि की

रचना कर, वह ही उसमे प्रवेश कर गया ।" जैसे विधुत शक्ति के संबंध में लट्टू प्रकाशित होने लगते है, पंखे वायु प्रवाहित करते है, हीटर उष्णता देने लगते है और रेडियो से शब्दोच्चारण होने लगते है, वैसे ही चिदानन्द ब्रहम के प्रवेश करने पर सभी चेतन होकर गतिशील, ज्ञानयुक्त, आनन्दमय और जीवन से परिपूर्ण हो गये । वह चिदानन्द स्वरूप ब्रहम ही सभी में प्रविष्ट होकर, सब का आत्मस्वरूप हो गया । आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणामय और अन्नमय पश्च्चकोशों से आवृत्त-सा हो गया । इसी से पश्च्चकोशों का ज्ञान होता है ।बहिर्मुखी दृष्टि होने से, अनात्म पदार्थो का ज्ञान होता है, आत्मा का नही । आनात्मशरीर से आत्माभावना हो जाती है। शरीर के पालन पोषण, रक्षण सम्बर्द्धन आदि में दिन-रात्रि निमग्न रहता है। शरीर में अहं-भावना और शरीर से सम्बन्धित व्यक्ति स्त्री-पुत्र, भ्रातादि में तथा वस्तु-भवन, सम्पत्ति आदि में, 'मम-भावना' हो जाती है । अहं-मम यानी मैं और मेरे लिए ही अनेक शुभाशुभ कर्मों में प्रवृत्त होता है । शुभाशुभ कर्मांनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त करता है। फ्लोर भोग के लिए अनेक नीच-उच्च योनियो में जन्म मरण होता है । जन्म-जन्मान्तर कल्प-कल्पान्तर व्यतीत होने पर भी, प्राणी जन्म मरण रूप दुःख से कभी निवृत्त नही होता ।

कर्मानुसार प्राणी जन्म के लिए माता के गर्भ मे आता है । गर्भावस्था के दुःख कल्पानतीत हैं । कटु, तिक्त, कषायादि माता के भोजन करने पर, उसका रस बालक को मिलता है । कुसुम से भी कोमल बालक के शरीर पर, कटु आदि रस से अतीव कष्ट होता है । मल, मूत्र रूधिर, पीव आदि के मध्य समय व्यतीत करना पड़ता है । नरक से भी महान् दुःख गर्भ से होते है । गर्भ से बाहर आने के समय दुःख का कहना ही क्या । जैसे आरे की तीक्ष्ण सहस्त्रों नोक से छिद्र बना हो और उसके बीच से निकलने पर, आरे की तीक्ष्ण नोंक से शरीर में वेदना होती है और शरीर छिल जाता है, वैसे ही जम्न-समय संकुचित सीन से निकलने पर बालक को असह्य वेदना होती है । वह मूर्च्छित हो जाता है, पूर्व जन्म का स्मरण नही रहता और गर्भ में भगवान् की भक्ति-ज्ञानादि की प्रतिज्ञा का भी विस्मरण हो जाता है। वाल्यावस्था में अनेक रोग, शय्या पर ही मल, मूत्रादि-त्याग और भूख-प्यास, कष्टादि का भी महान् दुःख होता है । कुछ बड़े होने पर, माता-पिता तथा गुरू की परतन्त्रता का दुःख । युवावस्था में स्त्री का क्रीड़ा-मृग होता है । इसी अवस्था में स्त्री के कारण ही अनेक अनाचार में पुरूष प्रवृत्त जाते है । चलना-फिरना, खाना-पीना, उठना-बैठना भी कष्टकर होता है । वह चाहते है - किसी प्रकार इनसे पीछा छूटे । मृत्यु समय आने पर सभी इन्द्रियों अपना कार्य बंद अतीव कष्ट से निकलते है प्राण । कर्मानुसार पुनर्जन्म और पुर्नमरण यही स्थिति है सभी प्राणियों की है ।

ईश्वर-कृपा

प्राणी को न तो अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है, न कल्याण पथ का । अकारण करूणावरूणालय, परब्रहम, परमेश्वर अपने अंशजीव के उद्धारार्थ वेदादि शास्त्रों को प्रकट करते है । जिसमें जीव के कल्याणार्थ निष्काम कर्म, भक्ति, योग उपासना तथा ज्ञान-मार्ग का प्रतिभादन करते है । स्वंय भगवान् निर्गुण, निराकार, अकाम, पूर्ण काम होने पर भी जीवोद्धार के लिए अवतरित होते है । स्वंय भगवान् निर्गुण, निराकार, अकाम, पूर्ण काम होन पर भी जीवोद्धार के लिए अवतरित होते है । राम, कृष्ण, वामन, परशुराम आदि रूपों से प्रकट होकर, वेदानुकूल सदाचरण का प्रदर्शन करते है । जिसे देखकर और स्वंय भी वैसा ही आचरण कर, जीव भी संसार रूप दुःख से मुक्त हो जाते हैं । इसी प्रकार भगवद्भक्त, ज्ञानी योगी तथा निष्काम कर्मी साधु पूरूषों के दिव्य जीवन और सदुपदेशों से प्रेरणा लेकर भी जीव मुक्त हो जाते हैं । क्योंकि ज्ञानी हो या अनन्य भक्त, वह भगवान से अभिन्न होता है, भगवत्स्वरूप ही होता है। उसकी सेवा भगवान की सेवा है और उसके उपदेश वेद वाक्य है । इससे जीव का अन्तःकरण शुद्ध होता है और शुद्धान्तःकरण में 'महावाक्य' अर्थात जीव ब्रहम की एकतावाचक शब्दों से ब्रहमाकाराकारित बृत्ति उदय होती है। इस वृत्ति से अज्ञानान्धकार विनष्ट होकर, ज्ञान-सूर्य का प्रकाश हो जाता है । फिर ता 'मैं ब्रहमा ही हूँ'' - ऐसा प्रत्यक्ष दर्शन होता है । शरीर तथा संसार से अहं -मम-भावना सर्वथा विनष्ट हो जाती है । ब्रहमास्वरूप होते हुए भी ब्रहमा-प्राप्त करता है । फिर कभी जन्म-मरण-चक्र में भ्रमित होना पड़ता ।

ब्रहमावेत्ता गुरू वास्तव मे ब्रहमा ही है । इसीलिए ''श्रीमद्भगवत्'' में स्वंय भगवान् का कथन हैः आचार्य मॉ विजानीयात (भा० ११, १७, २४)- आचार्य मुझको की जानो''। ब्रम्हावेद ब्रह्मैव भवति (मुण्ड उ० ३.२.९)'' - ब्रह्म का ज्ञाता ब्रह्म ही होता है'' । यह वेदान्त वाक्य भी इसी का प्रतिपादन करता है । जैसे नदी-पार होने के लिए कुशल तैराक के अवलम्बन की आवश्यकता है, वैसे ही संसार सागर पर करने के लिए ब्रह्मवेत्ता गुरू के अवलम्ब की आवश्यकता है । श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरू ईश्वर-स्वरूप ही हैं । अधिकारी पुरूष को सभी समय प्राप्त होते ही है । सदगुरू-प्राप्ति ईश्वर-प्राप्ति ही है । जीव के कल्याणार्थ यह ईश्वर की महती कृपा है

ईश्वर सर्वाधिष्ठान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, न्यायकारी तथा जीव के कर्मानुसार फल-प्रदाता है, उनमें पक्षपात की गन्ध की नहीं । वह सभी का कल्याण चाहते हैं, चाहे वह पापी हो या पुण्यकर्मा । पाप-कर्म का दुःख रूप फल देने में यही करूणा है । कि पाप से शुद्ध होकर जीव अपने अंशी ईश्वर को प्राप्त करे । पुण्य-कर्म का सुखरूप फल देने में उनकी यही आकॉक्षा है, कि सुखभोग करने के पश्चात् उसे विवेकोदय हो, कि पुण्य-कर्म से अक्षय सुख-शान्ति प्राप्ति नही हो सकती । अपने अंशी सर्वेश्वर को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है यह मात्र ज्ञान की । ज्ञान शुद्धान्तःकरण में ही प्रतिफलित होता है ।

अतः ईश्वर पुण्य पाप क्षीण कर शुद्धान्तःकरण बनाते है । यह उनकी अकारण कृपा है । फल-प्रदाता है, उनमें पक्षपात की गन्ध भी नहीं । वह सभी का कल्याण चाहते है चाहे वह पापी हो या पुण्यकर्मा । पाप-कर्म का दुःख रूप फल देने में यही करूणा है कि पाप से शुद्ध होकर जीव अपने अंशी ईश्वर को प्राप्त करे । पुण्य-कर्म का सुखरूप फल देने में भी उनकी यही आकॉक्षा है, कि सुखभोग करने के पश्चात उसे विवेकोदय हो, कि पुण्य-कर्म से अक्षय सुख-शान्ति प्राप्ति नही हो सकती । अपने अंशी सर्वेश्वर को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है एक मात्र ज्ञान की । ज्ञान शुद्धन्तःकरण में ही प्रतिफलित होता है अतः ईश्वर पुण्य पाप क्षीण कर शुद्धान्तःकरण बनाते है । यह उनकी अकारण कृपा है ।

अज्ञातज्ञापक वेद

पहले कहा गया है - ''जीवों के उद्धारार्थ वेदादि शास्त्रों को प्रकट करते हैं ।'' इसका अभिप्राय है कि हम किसी भी प्रमाण-द्वारा नही जान सकते, उसका ज्ञान वेद-द्वारा होता है । धर्माधर्म क्या है ? पुण्य-पाप किसे कहते है ? बन्धन-मोक्ष क्या, कैसे और क्यों होता है? ब्रह्म-जीव का स्वरूप क्या है? इनका परस्पर क्या संबंध है? जगत् ईश्वर का क्या संबंध है? सृष्टि तथा संहार का क्या क्रम है? आदि प्रश्नों का उत्तर न तो प्रत्यक्ष-प्रमाण द्वारा मिल सकता है, न अनुमान द्वारा । इनके समाधन के लिए एक मात्र वेद-प्रमाण है।

पिता के ज्ञान के लिए, एकमात्र माता के वचन प्रमाण है, अन्य कोई प्रमाण नही । वैसे ही सृष्टि, जीवादि विषयक जिज्ञासा के लिए वेद वाक्य ही प्रमाण है । क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान ही वेद है । ईश्वर अपने ज्ञान द्वारा सृष्टि, रक्षण तथा संहार करते है । जीवों का पथ-प्रदर्शन करते है और मुक्ति की युक्ति बताते है । जिन शब्दों में ज्ञान अनुविद्ध है, वही वेद है । अतः वेद ईश्वर का वाङ्मय शरीर है ।

जैसे महर्षि वेदव्यास-कृत 'वेदान्तदर्शन' कालिदास-प्रणीत, 'रघुवंश' आदि ग्रंथ है, वैसे ईश्वर-कृत वेद नही हैं । सभी पुरूषों-द्वारा रचित ग्रंथ बुद्धिपूर्वक ही होते है, इसी से पारूषेय माने जाते है । बुद्धि में भ्रम, प्रसाद करूणापाटव आदि दोष होते हैं। अतः पुरूष-कृत ग्रंथ में भी इन दोषों को होना सम्भव है । दोषयुक्त ग्रंथ प्रमाण-कोटि में नहीं आते । वेद निर्दोष और सब प्रमार्णों में शिरमौर इसी कारण हैं कि वह अबुद्धिपूर्वक निर्मित हैं। उनका ईश्वर द्वारा आदि सृष्टि में प्रकाशन मात्र होता है । श्रुति में कहा भी हैः -

यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वयो वै वेदांश्चप्रहिणोति तस्मै।

''जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को उत्पन्न करता और उसके लिए वेदों को प्रवृत्त करता है।''

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः ।

(बृह० उ० २-४-१०)

''इस महान भूत का जो निःश्वसित है, वह ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद है ।''

तात्पर्य यह कि जैसे श्वास-प्रवास की क्रिया अबुद्धिपूर्वक और अप्रयत्न के होती है, वैसे ही वेद है । वेद की रचना न तो अर्थ-ज्ञानपूर्वक है, न प्रयत्न द्वारा । जैसे ईश्वर अनादि, अनन्त तथा नित्य है, वैसे ही वेद ही अनादि, अनन्त और नित्य हैं। सृष्टि के आदि में वेद की आनुपूर्वी का स्मरण कर, उसी क्रम से ब्रह्मा जी में वेद का आविर्भाव करते हैं। इसी कारण वेद अकृत्रिम, नित्य अपौरूषेय और सर्वदोष विर्वजिज परम प्रमाण है ।

अन्य शास्त्रों का प्रणयन जिन विद्वानों ने किया, वह भी वेदानुसार होने के कारण ही प्रमाण माने जाते है ।

लौकिक पदार्थो का वर्णन, लौकिक शास्त्रों में है । किन्तु अलौकिक पदार्थ का वर्णन वेद मे ही मिलता है। वेद का यही वेदत्व है । अज्ञात पदार्थ का ज्ञान वेद द्वारा ही होता है । मनुष्यों के लिए धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का विधान है । सकाम स्त्री, पुत्र, धन स्वर्गादि प्राप्ति के लिए कर्म, निष्काम कर्म, भक्ति उपासना और ज्ञान सभी का प्रतिपादन एक मात्र वेद में मिलता है । वेद में तीन काण्ड हैं - कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, और ज्ञानकाण्ड । संहिता तथा ब्राहम्ण भाग कर्मप्रतिपादक है । अरण्यक भाग मुख्यतः उपासना का विधान करता है । उपनिषद् भाग जिन्हें वेदान्त भी कहा जाता है, उसमें प्रमुख ब्रह्यात्मैक्य ज्ञान का वर्णन है । अधिकारी-भेद से कर्म, उपसाना तथा ज्ञान-सघन का विधान वेद में है ।

दो पथ वेदों में कहे गये हैं- निवृत्ति पथ और प्रवृत्ति-पथ । सन्यासाश्रम जिसमें ज्ञान का विधान है, निवृत्ति-पथ के पथिकों के लिए है । प्रवृत्ति पथ गार्हस्थ पथिकों के लिए है उसमें कर्मं तथा उपासना का विधान है । आदि सृष्टि से ही दोनों प्रकार के पथिक तथा पथ विद्यमान हैं । सनक, सनन्दन, नारादादि निवृत्ति-परायण हुए और कश्यप, दक्षादि महर्षिगण प्रवृत्ति-परायण । वर्णाश्रम-धर्मानुसार विद्याध्ययन पूर्वक विवाह-संस्कार कर, यज्ञादि कर्मो का सम्पादन और पुत्रोत्पादन द्वारा वर्ण-परम्परा तथा सृष्टि की वृद्धि में सहायक प्रवृत्ति परायण पुरूष हुए । वह भी कालान्तर में सन्यासश्रम में प्रविष्ट होकर, ज्ञान द्वारा ब्रह्यास्वरूप मोक्ष-प्राप्त करते हैं । जो बाल्यावस्था से ही विरक्त है, वह गार्हस्थ में प्रवेश न कर, सन्यास लेकर ज्ञान-द्वारा मोक्ष । यज्ञादि कर्मो का सम्पादन और पुत्रोत्पादन द्वारा वर्ण-परम्परा तथा सृष्टि की वृद्धि में सहायक प्रवृत्ति परायण पुरूष हुए । वह भी कलान्तर में सन्यासाश्रम में प्रविष्ट होकर, ज्ञान द्वारा ब्रह्यास्वरूप मोक्ष-प्राप्त करते हैं । जो बाल्यावस्था से ही विरक्त है, वह गार्हस्थ में प्रवेश न कर, सन्यास लेकर ज्ञान-द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं । दोनो का लक्ष्य एक ही है- परब्रह्यस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति । इस प्रकार वेद अलौकिक-पथ-प्रशस्त करते हैं । अतः अज्ञात-ज्ञापक वेद कहे जाते हैं । वेदानुसार पुराण, महाभारतदि इतिहास, दर्शन, गृह्यसूयादिक ग्रन्थो में भी यही विशय हैं, अतः सभी प्रमाण कोटि में आते है ।

जीव-कृपा

पूर्वाचार्यो ने चार प्रकार की कृपा का कथन किया है- १- ईश्वर कृपा, २- शास्त्र कृपा, ३- गुरू कृपा, और ४- स्वयं कृपा । प्राणी को कर्मानुसार फल देना ईश्वर की कृपा है। शुभारभ कर्मानुसार फल भोग के लिए देश, काल, वस्तु तथा जन्मादि का संयोग करना और मोक्ष के लिए वेदादि शास्त्रों को प्रकट करना ईश्वर की महती कृपा है । श्रद्धा-भक्ति-समन्वित शास्त्राध्ययन परायण व्यक्ति के प्रति, शास्त्र अपने अर्थ को प्रकाशित कर देते हैं, यह शास्त्र कृपा हैं। शास्त्र रहस्य के ज्ञाता गुरू है । उनकी कृपा से रहस्य का ज्ञान होता है । यह है गुरू-कृपा । स्वंय व्यक्ति प्रयत्न द्वारा गेरू-सेवा, शास्त्राध्ययन तथा ईश्वरोपासना से युक्त होकर ज्ञान साधन में जब प्रवृत होता है, तब उसकी अपने ऊपर स्वंय-कृपा होती है । ईश्वर, शास्त्र तथा गुरू पर्जन्यवत् सब के लिए समान सुलभ हैं, किन्तु उर्वराभूमि के समान होती है, किन्तु ऊपर भूमि में कुछ भी उत्पन्न नही होता और उर्वरा भूमि में बीज के अनुसार उत्पन्न होता है । वैसे ही ईश्वरादि की कृपा- वर्षा सर्वत्र हो रही है, किन्तु अधिकारी पुरूष में ज्ञानादि साधनों की उत्पत्ति होती है, अनधिकारी में नही होती । इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति का प्रयत्न सर्वोपरि है । जिसने स्वप्रयत्न-द्वारा योग्यता-सम्पादन की, उसके ऊपर ईश्वरादि की कृपा सफल होती है । स्वयं-कृपा से सभी की कृपा सुलभ है ।

पूर्व कर्मानुसार प्राणी का स्वभाव बनता है और स्वभावनुसार प्रवृति । प्राणियों की विभिन्न प्रवृत्ति का कारण विभिन्न प्रकर की प्रकृति है । कोई ज्ञानी, कोई भक्त, कोई कर्मी, कोई विषयी, कोई क्रूरकर्मी, कोई दयालु, कोई आलसी और कोई जिज्ञासु होते है । भक्त ईश्वर का अंश है ईश्वर स्वरूप है । स्व-स्वरूप के अज्ञान से जन्म-मरण रूप संसार सागर में प्रवाहित हो रहे है । ईश्वर सभी का कल्याण चाहते है । सभी के स्वभावानुसार कल्याण-पथ का निर्देश वेदादि शास्त्रों में किया है । प्राणियों की शरीर रचना में इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि प्रमुख है । इन्द्रियों से कर्म, मन से भावना और बुद्धि से ज्ञान होता है । इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है और मन से बुद्धि । इसी के अनुसार कर्म से उपासना और उपासना से ज्ञान श्रेष्ठ है । किसी प्राणी में कर्म की प्रधानता होती है, किसी में उपासना की और किसी में ज्ञान की । कर्म उपासना तथा ज्ञान में ही सभी क्रिया, भावना तथा ज्ञान का समावेश हो जाता है ।

भगवान स्वंय कहते हैः -

योगास्त्रयो मया प्रोक्तानृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ।।
निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ।
तेण्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तुकामिनाम् ।।
यदृच्छया मत्कथा दौ ज्ञातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।

न निर्विण्णां नाति सक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ।।

(भा० ११.२०.६.८)

''मनुष्यों के कल्यार्थ मैंने तीन प्रकार के योग का विधान किया है, वह ज्ञान और भक्ति है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। सर्वकर्मसन्यासी तथा विरक्त पुरूषों के लिए ज्ञान योग है, जो विषयासक्त चित्तवाले कामी पुरूष हैं, उनके लिए तो कर्मयोग है । जो पुरूष न अति विरक्त है, न अति कामासक्त, जिनकी जन्म से ही मेरी कथा आदि मे श्रृद्धा है, उनके लिए भक्ति योग सिद्धि देने वाली होती है।'' अपने अपने अधिकारानुसार कर्म, भक्ति तथा ज्ञानयोग से सभी प्राणी मोक्ष स्वरूप भगवान् को प्राप्त होते है ।

यदि कोई शंका करे '' अज्ञान से प्राणी का वास्तविक ब्रह्मस्वरू‌प का साक्षात्कार होता है । किन्तु कर्म अज्ञानपूर्वक ही होते हैं । अतः कर्म से ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है । किन्तु कर्म अज्ञानपूर्वक की होते हैं । अतः कर्म से ब्रह्मस्वरूप-दर्शन सम्भव नही । भक्ति ही मानस कर्म हैं । इसलिए कर्म तथा भक्ति का संयोग भगवान् के साथ हो जाता है यानी निष्काम कर्म होते हैं, तब अन्तःकरण शुद्धि करने वाले हो जाते हैं । अन्तःकरण से संग्रहीत विषय वासनाओं का प्रक्षालन हो जाता है । फिर शुद्ध अन्तःकरण से गुरूपदेश से स्वरूप का ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष हो जाता है । इसीलिए भगवान् ने कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगे शब्द का प्रयोग किया है । इसी अभिप्राय से कहा हैः -

वेदा ब्रह्मात्मविषया त्रिकाण्डविषया इमे ।
परोक्षवादा ऋषयः परोयं मम च प्रियम् ।।

(भा०११.२१.३५)

''वेदों के तीनों काण्डों का विषय है ब्रह्म और आत्मा की एकता । किन्तु मन्त्रदुष्टा ऋषि परोक्षवादी है और परोक्ष-कथन मुझे भी प्रिय है ।'' कर्म प्रतिपादक श्रुतियों का तात्पर्य कर्म या स्वर्गादि में ही नहीं है । उनका तात्पर्य तो मोक्ष में हैं । किन्तु जो विषयासक्त है, उसे विषय स्वर्गादि का प्रलोभन देकर श्रौत कर्म मे प्रवृत्त कराते हैं । जैसे ज्वर में वैध चिरायता आदि कटु औषधि देता है । किन्तु बालक कटु औषधि नही लेता, तब उसे सर्करा का प्रलोभन दिखाकर कटु औषधि देता है और उससे ज्वर मिटाता है । शर्करा देने में वैध का अभिप्राय नहीं है । वैसे ही स्वर्गादि विषय-प्राप्त कराने की तात्पर्य यज्ञादि कर्मो का नही है। यह तो शर्करा के समान प्रलोभन मात्र है । वास्तविक लक्ष्य है मोक्ष स्वरूप ब्रह्म-प्राप्ति । प्राणी के अन्तःकरण में मल (राग-द्वेषात्मक वासना), विक्षेप (संस्कारजनित चंचलता) और अज्ञान (ब्रह्म तथा आत्मा की एकता को न जानना) यह तीन दोष है । जब तक यह विद्यमान है, तब तक ब्रह्मस्वरूप का दर्शन नही होता । इन्हें मिटाने का प्रयत्न ही साधन है । कर्मयोग से मत-दोष का विनाश होता है, भक्ति से विक्षेप का और ज्ञान से अज्ञान का । अतः ईश्वर की आज्ञा समझकर, ईश्वर के लिए

अपने वर्णाश्रम निहित कर्म करना चाहिए । कर्म में न आसक्ति हो, न फल की अभिलाषा । ऐसे कर्म ईश्वर की पूजा हो जाते है । इससे अन्तःकरण की समस्त वासनायें धुल जाती हैं अन्तःकरण में विषयों के प्रति विरक्ति और ईश्वरात्मा के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न हो जाती है ।

ईश्वरात्मा के प्रति अनुरक्ति या अनुराग ''भक्ति'' है । साध्य-साधन भेद से भक्ति दो प्रकार की है । अन्तःकरण का ईश्वराकारा होना ही साध्यभक्ति है । जिन साधनों के द्वारा अन्तःकरण ईश्वराकारा हो, वह 'साधन भक्ति' है । साधनरूपा भक्ति की बारह भूमिकायें मानी गई हैं : - १- महत्सेवा, २- उनकी दया का पात्र होना, ३- श्रद्धा, ४- श्रवण, ५- कीर्तन, ६- स्मरण, ७- पादसेवन, ८- अर्चन, ९- वन्दन, १०- दास्य, ११- सख्य और १२- आत्म निवेदन । इनके लक्षण इस प्रकार हैः - महत्सेवा दो प्रकार ही है, भगवद्भक्तों की सेवा, तथा भगवान् की सेवा । स्त्री, पुरूष, धन, मानापमान तथा देहासक्तिरहित, समदर्शी, ज्ञानी, दयालु, परोपकारी तथा ईश्वर में अनन्य भक्ति वाला 'भगवद्भक्त' है । ऐसे भक्तों की सेवा से तमोगुण का अपकर्म और सत्वगुण का उत्कर्ष होता है । तब भक्तों का कृपा-पात्र बनता है । तब साधक गुरू से साधन-मार्ग-पूछ कर, स्वंय चलने का प्रयत्न करता है, तब 'स्व-प्रयत्न' या 'आत्म-कृपा' होती है । जब स्वंय गुरू साधन मार्ग-पूछ कर, स्वंय चलने का प्रयत्न करता है। तब 'स्व-प्रयत्न' या 'आत्म-कृपा' होती है । जब स्वंय गुरू साधन मार्ग बतलाते हैं, तब 'गुरू-कृपा' कही जाती हैं । कृपा-पात्र होने पर भगवद्भक्त के धर्में में श्रद्धा नामक भक्ति है । यदि किसी साधक में श्रृद्धा नही होती, तो वह या तो विषयासक्त हो जाता है या पाण्डित्याभिमान में भक्तों की निंदा करने लगता है । श्रृद्धा पूर्वक भगवत कथा-श्रमण में प्रवृति होना -श्रवण-भक्ति' है । कथा-श्रवण से श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण दोनो पवित्र होते हैं, विषयोपभोग में अरूचि और भगवान में प्रेम होता है । श्रवण किए हुए भगवच्चरित्रो का वाण द्वारा कथन 'कीर्तन' है । इससे वाणी आदि कर्मेद्रियाँ पवित्र और मंगलदायिनी होती है । भगवत्पादारविन्दों का सदैव स्मरण रखना 'स्मरण' भक्ति है । इससे साधक भक्ति, वैराग्य, ज्ञान तथा विज्ञान की ओर अग्रसर होता है । चरण कमलों का सेवन 'पादसेवन' है, इससे भगवान् की प्रसन्नता होती है । भगवान् की भावनामयी मूर्ती के दर्शन पाकर जब पाकर पूजा करता है, वही 'अर्चन' है । अर्चन से इच्छानुसार फल प्राप्त होता है। अर्चन के अनन्तर प्रणाम 'वंदन' है, इससे साधक मुक्ति-पद का अधिकारी होता है । वन्दन से सेव्य-सेवक, भावना उत्पन्न होती है, यही 'दास्य-भक्ति' है । सेवक शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक समस्त कर्म भगवान् के अपर्ण कर देता है । इस भावना के परिपक्व होने पर, सदैव भगवान् का संग प्रतीत होता है । फिर मानों भोजन-पान, गमना-गमन, शयन-आसन, आदि सभी कर्मो में भगवान् साथ ही रहते हैं,

यही ‘सख्य’ भक्ति है । अनन्तर समस्त कर्मों का परित्याग कर, भक्त ‘आत्म-निवेदन’ करता है । इससे परम सम्मानित होता है और एक रूपता-प्राप्त होती है ।

इन साधनों से परिपूर्ण हो भक्त, साध्य-भक्ति मे प्रवेश करता है । भगवत्-प्रेमानन्द मं चित्त द्रवित हो जाता है । द्रवित चित्त में भगवत्स्वरूप सम्मिलित हो एक हो रूप हो जाता है । चित्त भगवदाकर हो जाता है । जैसे लाक्षा (लाख) अत्यन्त कठोर होने पर भी अग्नि-संयोग से द्रवित होकर, जल के समान पतली हो जाती है । द्रवित लाक्षा में हरित-पीतादि रंग का संयोग होने से, लाक्षा हरित-पीतादि रंग वाली हो जाती है । शुष्क तथा कठोर होने पर, न तो रंगलाक्षा से, निकल सकता है, न लाक्षा ही रंग को निकाल सकती है । वैसे ही कठोर मन भी भगवत्प्रेमाग्नि से द्रवित होता है और उसमें भगवत्स्वरूप संयोग होता है । तब मन भगवदाकार हो जाता है । ऐसी स्थिति में न तो भक्त ही भगवान को निकाल सकता है, न भगवान ही भक्तों से प्रथक हो सकते है । भगवदाकारकारितं मन प्रवाहित होता है, सागर की ओर गंगा प्रवाह की तरह । यह साध्य भक्ति है, यही मानसी सेवा है और यही भक्ति चरम स्थिति है । इसके पश्चात् भक्त ज्ञान-क्षेत्र में प्रवेश करता है ।

ज्ञान के साधन दो प्रकार के हैः बहिरंग और अन्तरंग । साधन चतुष्टयः १. नित्यानित्य विवेक, २. वैराग्य, ३. शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रृद्धा तथा समाधान-षटसम्पत्ति और ४. मोक्ष का इच्छा । यह बहिरंग साधब्रन है । अन्तरंग साधन हैं - श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ‘तत्वमसि, अहंब्रह्मास्मि, आदि महावाक्स्रों को गुरू-मुख से सुनना - ‘श्रवण’ है । ‘तत्’ यानी ब्रह्म या ईश्वर, ‘त्वम्’ यानी जीव, यह दोनो एक हैं, सह ‘असि’ पद से कहा गया है । ईश्वर सर्वज्ञ, सर्व-समर्थ तथा कर्म-फल दाता है और जीव अल्पज्ञ, असमर्थ तथा कर्ममात्र करने वाला है । अतः महान अन्तर होने से दोनों एक कैसे हो सकते हैं? वहाँ ‘लक्षणा’ द्वारा अर्थ जाना जाता है । यहाँ ‘भागत्योग लक्षणा’ से एकता होती है । इस लक्षणा के अनुसार एक अंश का त्याग और दूसरे अंश का ग्रहण होता है । जैसे यह देवदत्त वही है अर्थात जिस देवदत्त को बीस वर्ष पूर्व तथा बीस वर्ष पश्चात आत कानपुर में देख रहे हैं । बीस वर्ष पूर्व और बीस पश्चात् के काल दो भिन्न-भिन है । और हरिद्वार और कानपुर शहर भी भिन्न-भिन्न हैं । फिर वही देवदत्त कैसे हो सकता है ? इसमें देश काल का परित्याग और देवदत्त का ग्रहण करने से जैसे दोनों की एकता होती है, वैसे ही ईश्वर के सर्वज्ञादि और जीव के अल्पज्ञादि अंश का परित्याग करने पर, जो चेतन तत्व शेष रहता है, वह एक ही है । इस प्रकार श्रवण का मनन-द्वारा निश्चय होता है और फिर उसका निदिध्यासन होता है । मैं अखण्ड ब्रह्म ही हूँ । इस प्रकार आकाशवत् चैतन्य ब्रह्मस्वरूप में मानसिक वृत्ति प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होना ‘निदिध्यासन’ है । अभ्यास द्वारा परिपक्व होन पर यही समाधि कही जाती है । इस अवस्था में किचिंत भी वेद नहीं रहता । ध्याता, ध्येय तथा ध्यान रूपा त्रिपुटि का

अभाव हो जाता है । अखण्ड, एकरस चिदानन्दस्वरूप ही सर्वत्र परिलक्षित होता है । इस समाधि में जन्म-जन्मान्तन्तर, कल्प कल्पान्तर के सभी पुण्ड -पाप भस्त हो जाता है । कोई कारण शेष रहने पर से फिर शरीर-त्याग के अनन्तर ज्ञानी का न कही जाना होता है, न आना । न तस्य प्राणा शरीर-त्याग के अनन्तर ज्ञानी का न कही जाना होता है, न आना । न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति (बृह० उ०४.४.६) ''उस ज्ञानी के प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता'' । जिस-जिस आकाशादि माहाभूत से और सत्वादि गुणों से शरीरेन्द्रियादि बने थे, वह अपने-अपने कारण मे लीन हो जाते है । जीवात्मा आकाशवत् ब्रह्म स्वरूप था । वह तद्रूप हो जाता है । इस प्रकार ज्ञानी हो विदेहमुक्ति होती है ।

निष्कर्ष है यह कि प्राणी ईश्वर, शास्त्र और गुरू-कृपा का अवलम्ब लेकर अपने प्रयत्न-द्वारा स्वंय संसार-सागर से पार हो जाता है । यही जीव-कृपा है । सर्वाधिक महत्व अपने प्रयत्न का है ।

गुरू-कृपा

जीव-कृपा यानि मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । किन्तु सद्गुरू कृपा भी कम महत्वपूर्ण नही है । क, ख, ग भी बिना किसी के बतलाये नही आते, फिर संसार का मूल कारण ब्रह्म, बिना गुरू के कैसे ज्ञात हो सकते है ? छान्दोग्य उपनिषद में आया है नारद जी पूर्ण शास्त्रज्ञ थे । वेद, वेदांग, पुराण इतिहास, कल्प आदि सभी शास्त्र उन्हें करामलकवत् उपस्थित थे । किन्तु आत्म-ज्ञान शून्य थे । इससे वह शोक-ग्रसित रहते थे । उन्होंने सुना था कि आत्मवेत्ता शोक का पार कर जाता है । तब वह भगवान् सनत्कुमार के समीप गए और अहं भगवः शोचमि (छा० उ० ७.२.३) "भगवान । मैं शोक करता हूँ", आप मुझे शोक से पार कर दीजिए । तब भगवान सनत्कुमार ने 'भूमा' तत्वोपदेश कर उन्हें शोक से पार किया । यदि गुरू सनत्कुमार की कृपा न होती , तो कभी भी नारद जी ज्ञानी न होते । इसलिए गुरू-कृपा परमावश्यक है ।

इसी उपनिषद् में एक दूसरी कथा है । गान्धार देश निवासी एक पुरूष बहुमुल्यवान रत्नों से विभूषित, अपने गृह के प्रांगण में प्रमत्त सो रहा था । रात्रि में आभूषणों के लोभ से चोर उसे बांध कर गहन वन में ले गए । वहाँ उसके समस्त आभूषण उतार लिए और हाथ पैर बांधकर कुश, कण्टक, वृश्चिक, सर्प, व्याघ्रादि से सकुल वृक्षों से परिपुर्ण वन में फेक दिया । सर्गादि के भय से तथा कुश-कण्टक आदि से उसकी देह छिलकर जर्जरित हो गई । क्षुधा-पिपासा तथा शीत-उष्ण से संतृप्त होकर बड़ा ही दुःखी हो रहा था । बन्धन से मुक्त होने के लिए व्याकुल होकर इधर-उधर सभी तरफ मुख करके रोता और चिल्ला रहा था । "मुझे गान्धार देश से नेत्रों मे पट्टी बांधकर लाया गया है और यहाँ हाथ-पैर बांधकर छोड़ दिया गया है । कोई मुझे मुक्त कर दे ।" कुछ दयालु पथिक उसी ओर से निकले । उन्होंने नेत्रों की पट्टी खोली, हाथ पैर के बंधन भी काट दिए और गान्धार देश का मार्ग बता दिया । वह भी बुद्धिमान था । एक ग्राम से दूसरे ग्राम पूछता हुआ, गान्धार देश-पहुँचकर अपने घर में बन्धु-बान्धवों से मिलकर परम् प्रसन्न हुआ ।

इस दृष्टान्त के अनुसार पुरूष ब्रहानन्द से रहित और आत्म-अज्ञान रूपी निन्द्रा के वश में हो रहे हैं । सच्चिानन्द रूप का हरण करने वाले पाप-पुण्य रूप चोरों ने दृष्ट-अदृष्ट अनेक विषय-भोगों की तृष्णाओं से बांध कर तेज, जल और अन्नादिमय देह रूप वन में छोड़ दिया । यह वन वात, कफ, रूधिर, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, शुक्र, कृमि तथा मल- मूत्र से परिपूर्ण है। शीज उष्ण आदिक अनेक द्वन्दों से युक्त और सुख-दूःखमय है । मोहरूप वस्त्र से नेत्रों पर पट्टी बंधी है । इस कारण देहाभिमान से मैं अमुक का पुत्र हूँ, यह मेरे बन्धु-बान्धव हैं, मैं सुखी-दुःखी, मूढ़-विद्वान् तथा पुण्यात्मा-पापात्मा हूँ, मेरा पुत्र मर गया, धन नष्ट हो गया । हाय-हाय मैं मारा गया, अब मेरी क्या गति होगीं ? मैं कैसे जीवित रहूँगा ? आदि अनेक प्रकार से प्रलाप कर, रोता चिल्लाता है । जब कोई

दयालु, ब्रह्मवेत्ता पुरूष मिलता है और उससे कहता है, भाई! तुम शरीर नही हो, न स्त्री, पुत्र, बन्धु-बाधव आदि धर्म वाले ही हो । तुम तो अखण्ड, अनन्त, ब्रह्म ही हो ।'

इस ज्ञानोपदेश से अज्ञान रूप नेत्रों की पट्टी खुल जाती है । तृष्णा के बंधन से मुक्त होकर, अपने ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त कर सुखी और शान्त हो जाता है । उपनिषष्द्-प्रतिपादित कथा का सार यही है । कि आचार्यवान्पुरूषोवेद (छा० उ० ६.१४.२) आचार्यवान् पुरूष ही ब्रह्म-स्वरूप को जानता है ।

जब मनुष्य संसार को दुःखमय और विनाशी समक्ष लेता है । समस्त कर्मों के फल और स्वर्ग, ब्रह्मलोकादि को भी नाशवान् निश्चय करता है । तब यही सोचता है - "कर्म से कभी भी सुख शाक्ति प्राप्ट नहीं हो सकती । सुख शाक्ति के लिए किसी बीतराग, जानी पुरूष के पास चलना चाहिए ।" त बवह कर्म-त्याग कर और कर्म से आस्था हटाकर, श्रोत्रिय- ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू की शरण में जाता है। उनकी सेवा -शुश्रूवा करके प्रसन्न करता है । प्रसन्न जानकर, अपना अभिप्राय प्रकट करता है- "प्रभों, जन्म -मरणशील संसर में अनादिकाल से कष्ट उठा रहा हूँ । विषय भोगों की तृष्णा से व्याकुल अनेक शुभाशुभ कर्म किए । उनके फलोपभाग के लिए कभी नीच योनियों में जन्म लिया, कभी उच्च योनियों में किन्तु कही भी शान्ति न मिली । भगवन् क्या इस जन्म-मरण रूप संसार से मुक्ति संभव है ? और परम शान्ति तथा अविनाशी सुख प्राप्त हो सकता है । मैं आपकी शरण हूँ । मुझे दुःखों से मुक्त की दीजिए।

तब गुरूदेव ने सान्त्वना देते हूए कहा- "वत्स, चिन्ता न करो । वास्तव में तुम सुख-स्वरूप हो । अपने स्वरूप को भूलकर और अनात्मा शरीर में -अहं-भावना, करने से दुःख परम्परा में पड़े हो । अहं-भावना निवृत्त होते ही दुःख से मुक्त हो जाओगें ।"

"गुरूवर ! अनात्म शरीर से आत्म भावना कैसे दूर होगीं।" शिष्य ने जिज्ञासा की "प्रिय ! आत्म-अज्ञान से शरीर से आत्म-भावना होती है । अज्ञान से ही कामना, कामना सं कर्म, कर्म से सुख-दुःखमय भोग की परम्परा चल पड़ती है । जब तक अज्ञान-निवारण न होगा, तब तक जन्म-मरण रूप संसार से मुक्ति भी न होगी ।" गुरू जी ने उत्तर दिया ।

"भगवान ! अज्ञान निवारण का क्या उपाय है ? " प्रश्न किया शिष्य ने ।

"अज्ञान -दूर करने के लिए पहले साधन चतुष्टच का सम्पादन करना आवश्यक है।" गुरूदेव न बहिरंग साधन की ओर संकेत किया ।

प्रभो । साधन चतुष्टय किसे कहते है ?

"नित्य-अनित्य पदार्थ का विवेक प्रथम साधन है । वैराग्य द्वितीय, षट्-सम्पत्ति तृतीय और मोक्षेच्छा चतुर्थ साधन है । साधन सम्पन्न होने पर पुरूष ज्ञान का अधिकारी होता है पहले तुम अधिकारी बनने का प्रयत्न करो ।" संक्षिप्त परिचय दिया गुरूजी ने ।

“भगवान! इन साधनों को विस्तार से समझा दीजिए। जिससे मैं समझकर, अपना सकूँ।” शिष्य को जानने की उत्सुकता थी।

“अच्छा वत्स। सुनो, द्रष्टा तथा दृश्यमय समस्त संसार है। दृष्टा एक, नित्य और अविकारी है। दृश्य अनेक जड़, अनित्य और विकारी है। आत्मा दृष्टा है और अनात्मा दृश्य। शरीर, ज्ञान, कर्मेन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण की वृत्तियाँ सभी अनात्मा हैं। इनका जानने वाला दृष्टा ही आत्मा है। शरीर तथा संसार क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है-नाश को प्राप्त होता है। किन्तु आत्मा सदैव एकरूप विद्यमान रहता है। संसार और शरीर पहले भी आत्मा था और पीछे भी रहेगा, इस कारण वह नित्य है। आत्मा ही ब्रह्म है ब्रह्म त्रिकालाबाधित सत्य, ज्ञान, आनन्द और अनन्त स्वरूप है। वही सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मा है इस प्रकार नित्य-अनित्य या आत्मानात्म पदार्थ का विवेक करना चाहिए। अनात्म-पदार्थ में अहं-मम का परित्याग कर्तव्य है और आत्मा को ‘अहं’ रूप से ग्रहण करना चाहिए।” गुरू जी ने विवेक का विवेचना किया। उन्होंने पुनः कहा- विनाशशील शरीर तथा संसार को जब विवेकी ठीक प्रकार से समझ लेता है, तब यहाँ से स्वर्गलोक तथा ब्रह्मलोक तक के पदार्थो मे अनास्था हो जाती है। किसी भी वस्तु या व्यक्ति में राग नही रहता। कंचन, कामिनी तथा काया को मन से भी स्पर्श करने की इच्छा नहीं होती। विवेकी पुरूष सभी को काक-विष्ठावत् मानकर, दूर से ही त्याग देता है। यही वैराग्य है। गुरू ने कहा।

“भगवान ! षट् सम्पत्ति किसे कहते है और मुमुक्षुता क्या है ? शिष्य मनोयोग पूर्वक समझने का प्रयत्न कर रहा है।

“सुनो, संसारिक पदार्थो में वैराग्य होने पर भी, अनेक जन्मों की संचित विषय वासनायें मन में रहती है। मन विषयों की ओर स्वतः जाता है। उसे उनकी ओर से खींच कर, आत्मा की ओर लाना-यही षट् सम्पत्ति में प्रथम ‘शम’ है। नेत्रादि, इन्द्रियाँ, रूपादि विषयों की ओर जाती हैं, उनका निग्रह करना ‘दम’ है। जब चित्त समस्त विषयों से विमुख हो जाता है, तब ‘उपरति’ नामक तृतीय सम्पत्ति आ जाती है। प्रारब्धानुसार सभी प्रकार के दुःख आने पर उसको सहन करना ‘तितक्षा’ है। वेदशास्त्र तथा गुरूवचनों में पूर्ण विश्वास करना, ‘श्रद्धा’ है और षश्ठी सम्पत्ति, ‘समाधान’ है- ब्रह्मरूप सदात्मा में तैलधारावत् चित्त की एकाग्रता। संसार को विनश्वर तथा दुःखमय जानकर इनके बन्धन से मुक्ति की इच्छा करना ‘मुमुक्षुता’ है गुरू जी ने साधन-चतुष्टय की व्याख्या की। पुनः कहा “इन साधनों से भी श्रेष्ठ एक साधन ‘भक्ति’ है। जिसके होने पर शीघ्र ही ज्ञान की अधिकारी हो जाता है।

“गुरूदेव। भक्ति के लक्षण भी बतला दीजिए।” शिष्य का प्रश्न था।

“जैसे गंगा प्रवाह निरन्तर सागर की ओर प्रवाहित हो रहा है, वैसे ही मन की वृति निरन्तर अपने आत्मस्वरूप की ओर लगी रहे, सही ‘भक्ति’ का लक्षण है इन साधनों

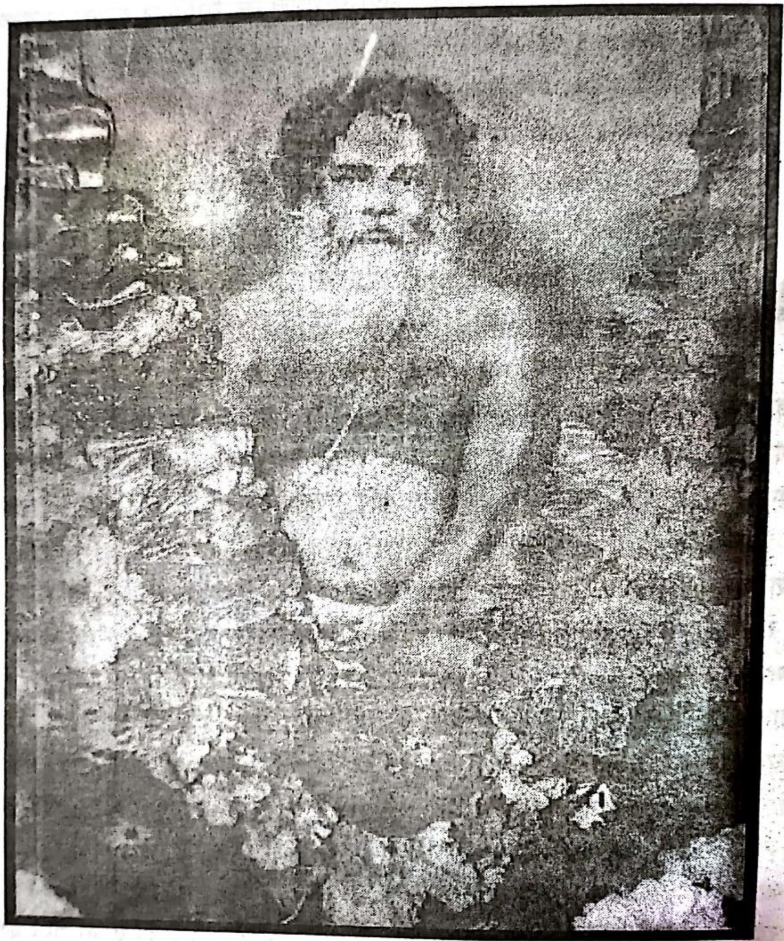

स्वामी विशुद्धानन्द जी

से सम्पन्न होन पर ज्ञान होता है ।" गुरू जी ने कहा ।

"भगवान ! ज्ञान कैसे होता है । और उसका स्वरूप क्या है ? यदि मेरे जानने योग्य हो तो उसे भी बतला दीजिए ।" शिष्य ने नम्रता पूर्वक जिज्ञासा की ।

'वत्स ! सुनो, ज्ञान विचार से उत्पन्न होता है । विचार इस प्रकार करना चाहिए - मैं भूमि पच्चभूतों का समूह नहीं हूँ । देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा जीव भी मैं नहीं हूँ । क्योंकि यह सभी विकारी, दृश्य और दुःखदायी हैं । किन्तु इनसे विलक्षण सबका ज्ञाता, दृष्टा सूक्ष्म, अविकारी और नित्य मैं हूँ । आत्मा एक, अखण्ड, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप है । उसी में शरीरादि संसार कल्पित है । आत्मा ही ब्रह्म है और वह मैं हूँ । ऐसी स्थिति में मैं सुखी-दुःखी हूँ, आदि कल्पना मिथ्या है । मैं सबसे अतीत सच्चिदानन्दघन पूर्ण परमात्मा हूँ । इस प्रकार विचार करने पर आत्म-साक्षात्कार होता है ।" गुरू जी ने बताया ।

"गुरूदेव । इस विचार से यह तो निश्चय होता है कि मैं शरीर से प्रथक आत्मा हूँ । किन्तु आत्मा ब्रह्म है - यह अभी समझ में नही आता । इसे पुनः समझाने की कृपा करिए।" शिष्य ने प्रार्थना की ।

"प्रिय! तुम विचार करने में कुशल हो और तुम्हारी बुद्धि सूक्ष्म पदार्थ में प्रवेश कर रही है । आत्मा और ब्रह्म की एकता मे शास्त्र ही प्रमाण है । तत्वमसि (छा०उ० ६.८.७) - वह सदब्रह्म तुम ही हो" अहं ब्रहासि (ब्रह० उ० १.४.१०)- मैं ब्रह्म हूँ आदि प्रमाण है । परमात्मादर्शन सम्पन्न पुरूषों का अनुभव भी ऐसा ही है । अहं मनुर भवं सुर्यश्य (बृह० उ० १.४.१०) मै मनु हुआ और सूर्य भी मैं ही, यह अनुभव वामदेव मुनि का प्रसिद्ध है । इसमें भी है - जैसे एक ही महाकाश सर्वत्र है, घट की उपाधि से आकाश न तो परिच्छिन्न हो जाता है और न महाकाश से प्रथक घटाकाश है । घट-उपाधि से अज्ञानियों को घटाकाश भिन्न सा प्रतीत होता है । किन्तु वस्तुतः घटाकाश कोई वस्तु नहीं है घट-उपाधि के न रहने पर, घटाकाश का भी अस्तित्व नही हैं वह एक मात्र माहकाश ही है । वैसे ही अखण्ड, अनन्त, एक, चेतन, ब्रह्म ही है स्थूल-सुक्ष्म शरीर की उपाधि से वही 'जीवात्मा' कहा जाता है । अज्ञान से शरीर के धर्मो को अपने से स्वीकार करने से मैं दुःखी-सुखी, जन्म-मरणशील जीव हूँ माल लेता हूँ । इसी कारण संसार-बन्धन में पड़ जाता है । जैसे रेशम का कीड़ा अपने से ही लार- रेशम निकाल कर, स्वंय उसमे फस जाता है । वैसे ही ब्रह्म स्वरूप जीव की भी स्थिति है । आत्म-ज्ञान होने पर शरीर रूप उपाधि की भ्रान्ति मिट जाती है, तब महाकाशवत् अखण्ड ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। भिन्नता समाप्त हो जाती है । बार-बार विचार और निदिध्यासन करने से, तुम्हे ब्रह्मस्वरूप आत्म दर्शन होगा ।" गुरूदेव ने मार्मिक समाधान किया ।

शिष्य ने मनन तथा निदिध्यासन कर, अपने को ब्रह्मस्वरूप जान लिया । तब वह अपना अनुभव कहता है - हे भगवान ! महाप्रलयवत् एक अखण्ड चेतनतत्व मैं हूँ । न कही

शरीर का अस्तित्व प्रतीत होता है, न संसार का । न माया है, न मृत्यु, न बंधन है, न मुक्ति और न जीव है, न ईश्वर । सर्वत्र सर्वस्वरूपों में मैं ही एक मात्र हूँ । मैं मुक्त हूँ, बंधन का भ्रम मिट गया । अब मैं कृत-कृत्य हूँ । आपको बारम्बार प्रणाम हैं ।"

इस प्रकार अनन्त जन्म-जन्मान्तर, कल्प-कल्पान्तर के अज्ञानान्धकार को, क्षण में ब्रह्मज्ञ गुरू, ज्ञानसूर्य द्वारा निवृत कर देते है । अतः गुरू-कृपा का महत्व सर्वोपरि है । इसीलिए उपनिषद् में कहा हैः

यथा जात्यनन्धस्य रूप ज्ञानं न विद्यते,
तथा गुरूपदेशेन बिना कल्पकोटिभिस्तत्वज्ञानं न विद्यते ।

(त्रिपा० उ० ५)

जैसे जन्मान्धपुरूष को रूप-ज्ञान नही होता, वैसे ही गुरू के उपदेश के बिना कोटि कल्पों में ही तत्वज्ञान नही होता ।

श्रेष्ठ-मानव

यह हम पहले ही देख चुके है कि सभी प्राणियों से मनुष्य श्रेष्ठ है । किन्तु मनुष्यों में कौन श्रेष्ठ है ? इस पर कुछ यहाँ कहा जा रहा है । भगवान मनु ने कहा है :-

लेकानां तु विवृद्धयर्थे मुखबाहूरूपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रिय वैश्यं शूद्रश्व निरवर्त्तयत् । (मनु १.३१)

ईश्वर ने लोको की वृध्दि के लिए, मुख से ब्राहमण को उत्पन्न किया, बाहू से क्षत्रिय को उरू से वैश्व को और पैरों से शूद्र को उत्पन्न किया । जैसे शरीर एक है, हाथ-पैर, मुख-नाभि, उपस्थादि भेद की कल्पना शरीर में ही है । कोई भी अंश त्यागनीय नहीं है, सभी अपने-अपने तथा कार्य में उपयुक्त है । एक का कार्य दूसरे से नहीं हो सकता । फिर भी मुख की अपेक्षा हृदय, बाहु नीचे है । बाहु से उदर कटिर नीचे है और इनसे भी पैर नीचे है । मुख में ही ज्ञानशक्ति है, बाहु में बल-शक्ति, उदर में संग्रह-शक्ति और पैर में क्रिया-शक्ति है । अपने-अपने कार्य में सभी की प्रधानता है । क्रिया से संग्रह होता है, संग्रह से पालन-पोषण, पालन-पोषण से बल-वृध्दि, बल से रक्षा, रक्षा से ज्ञान का विकास और ज्ञान से रक्षण, संग्रह, क्रिया, लौकिक-पारलौकिक एवं आत्म-ज्ञान सम्पन्न होता है । सभी के पूर्व ज्ञान होता है । ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया-यह क्रम है । इस प्रकार सबसे श्रेष्ठ ज्ञान प्रधान मुख से उत्पन्न होने से ब्राहमण सबसे श्रेष्ठ है । ब्राहमण से नीचे क्षत्रिय, क्षत्रिय से नीचे वैश्व और वैश्व से नीचे शूद्र माने गए हैं । श्रेष्ठता के तारतम्य का विधान इस प्रकार है:-

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठः प्राणिनां बुध्दिजीवनः ।
बुध्दिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राहमणाः स्मृता ।।
ब्रहामणेषु च विध्दांसो विद्वत्सु कृतबुद्वयः ।
कृतबृध्दिषु कर्तारि । कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ।।

''पृथ्वी आदि भूतों से प्राणन क्रिया करने वाले वृक्षादि श्रेष्ठ है, वृक्षादि से कीट,पंतग, इनसे पक्षी श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुध्दिमान होने से पशु आदि श्रेष्ठ है । बुध्दिमानों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में ब्राहमण श्रेष्ठ है । ब्राहमणों में विद्वान ब्राहमण श्रेष्ठ है, विद्वानों में जो शास्त्र-चर्चा में कुशल हो, वह श्रेष्ठ है, इनमें भी श्रेष्ठ ज्योतिष्टोमादि कर्म-करने वाला और कर्म-करने वाले ब्राहमणों से ब्रह्मज्ञान सम्पन्न ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ईश्वर स्वरूप विराट् पुरूष के मुख से उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ है और ब्राह्मण में जो ब्रह्म तथा आत्मा की एकता का ज्ञाता है, वह श्रेष्ठ माना गया है । क्योंकि मानव-जीवन और विशेष ब्राह्मण का शरीर ब्रह्म-प्राप्ति के लिए मिला है । जो इसे प्राप्त कर लेता है, वह कृतकृत्य हो जाता है । इससे वह सर्वश्रेष्ठ है । ब्राह्मणों में पश्वगौड़ और पश्चद्रविण- यह दश भेद माने जाते हैं । कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़ आदि पश्च गौड़ है । वास्तव में से दश भेद देशकृत हैं । देश में भी भूमि, नदी, पर्वतादि के भेद से उत्कृष्ट तापकर्षता-भेद

माने गए है । कोई यज्ञीय भूमि है, कोई नही । जहाँ कृष्णमृग होता है, वह भूमि यज्ञ के लिए पवित्र मानी गई हैं । ब्रह्मवर्त आदि देश भी पवित्र माने जाते है । पवित्र गंगा तथा यमुना के मध्य की भूमि अतीव पावन मानी गई है । इसे अन्तर्वेद नाम से स्मृति में कहा हैः-

या गतिर्योगयुक्तानां मुनीनामुर्ध्वरंतणाम् ।
साः गतिः सर्व जन्तूनामन्त - वेंद निवासिनाम् ।

"जो गति योग-युक्त पुरूषों और उर्ध्वरेता मुनियों को प्राप्त होती है, वह गति अर्न्तवेद के समस्त निवासियों को प्राप्त होती है ।"

इस प्रकार मानवों में श्रेष्ठ ब्राह्मण और ब्राह्मणों में कान्यकुब्ज ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है । कान्यकुब्जः द्विजः श्रेष्ठः "कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रेष्ठ है" इस स्मृति के अनुसार सारस्वत आदि सभी ब्राह्मणों से कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की श्रेष्ठता कही गई है । यद्यपि सभी ब्राह्मण एक है, तथापि देश, स्थान, विद्या, कर्म और ब्रह्मज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठता-निकृष्टता का कथन है । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों मे खान-पान, विवाहादि सम्बंध में सदैव शुद्वता रखा जाता है । यह विज्ञान-सिद्ध है कि यदि किसी तपेदिन, चेचक, श्वार आदि रोगों से संबंध होगा, तो उसके कीटाणु का प्रवेश अन्य व्यक्ति में भी हो सकता है । उसे भी वह रोग हो जाएगा । इसी प्रकार यदि तमोगुणी या रजोगुणीरजागुणी व्यक्ति के हाथ के भोजन का सेवन सत्वगुण व्यक्ति करेगा, तो भोजन के संसर्ग से तमोगुण या रजोगुण उसमें भी आ सकती है । यही कारण है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण खान-पानादि में सदैव सावधान रहते है । सत्वगुण से ज्ञान ध्यान तथा ईश्वर की और प्राणी अग्रसर होता है । रजोगुण से काम, लोभ, विग्रह क्रिया में प्रवृत्त होता है और तमोगुण से आलस्य, निन्द्रा, प्रमादादि में । लक्ष्य ईश्वर ईश्वर प्राप्ति है, इस कारण सदैव व्यवहार में सावधान रहना चाहिए । सात्विक खान-पान, सम्बंध, देश, कालादि का सेवन करने से सत्वगुण अभिवृद्ध होता है । सत्वगुण-अभिवृद्धि होने पर ज्ञान-ध्यानादि की सिद्धि होती है । अतः मोक्षकामी सदैव इसका ध्यान रखते है ।

जन्म तथा विद्याध्ययन

श्रोत्रिय- ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू से मानव को प्रेरणा मिलती है। विषयों से विरक्ति ईश्वर-भक्ति, विवेकोदय, इन्द्रिय-निग्रह, मनःशान्ति और ज्ञानानुभूति होती है । इससे मानव आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःखों से मुक्त होकर, निर्भयय, परमशान्त, आनन्दस्वरूप प्रतिष्ठित हो जात है । यही मानव का परम पुरूषार्थ है, जीवन का चरम लक्ष्य है और सर्वोच्च स्थिति है । अतः सद्गुरू पुरूष के पावन चरितामृत का पान करना, उनमें श्रृद्धा तथा विश्वार रखना सर्वोतकृष्ट साधन है ।

ऐसे ही महान् पुरूषों की श्रेणी में आते है- अवधूत, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज । आपकी ज्ञान-निष्ठा अनुपम रही । सरल-चित, स्वाभाविक विरक्ति, आग्रहातीत, भक्त-परतन्त्रता एवं शंका-समाधानार्थं प्रमाण तथा युक्ति कथन आपकी विशेषता थी । आपका जन्म भगवान राम तथा श्रीकृष्ण के पावन उत्तर प्रदेश में हुआ । पतित पावनी गंगा तथा यमुना के मध्य का देश 'अन्तर्वेद' कहा जाता है । इस परम पावन कानपुर-जनपद के अर्न्तगत एकग्राम है छोटी पाली । ग्राम साधारण है । किन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न है । यही सदाचार सम्पन्न, विवेकी पवित्र तथा कान्यकुब्ज कुल में उपमन्यु गोत्रीय थे श्री मोहनलाल जी अवस्थी । उनके पुत्र श्रीभगवान्दीन जी अवस्थी थे और उनके पुत्र हुए श्री ज्वालाप्रसाद जी अवस्थी । श्री ज्वालाप्रसाद अवस्थी के तीन पुत्र हुए - श्री रघुनन्दन प्रसाद जी अवस्थी, श्री यदुनन्दन प्रसाद जी अवस्थी और श्री शिवनन्दन प्रसाद जी अवस्थी । श्री रघुनन्दन प्रसाद जी अवस्थी ही आगें ग्रहस्थाश्रम-परित्याग कर, सन्यासाश्रम में प्रविष्ट हुए और श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

श्री रघुनन्दन प्रसाद जी अवस्थी का जन्म सम्वत् १९३४ विक्रमीय अधिक ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा चन्द्रवार को हुआ । आपका लालन-पालन अतीव प्रेम से हुआ । पिता-माता का स्नेह तो सर्वोपरि था, किन्तु पितामही का समस्त स्नेह आप पर न्यौछावर था । वह प्राणों से भी अधिक पौत्र से प्रेम करती थी । समस्त परिवार तथा पुरजनों का मन इनकी ओर आकर्षित था । पता नही क्यों ऐसा हो रहा था ? सभी लोग अपने पुत्रों से भी अधिक प्रेम करते थे इनमें । जैसे भगवान श्री कृष्ण पर ब्रज के युवक, युवती, वृद्ध-बालक सभी प्रेम करते थे, वैसे ही इन पर भी सबका प्रेम था । अपने आत्मा पर सबका प्रेम स्वाभाविक होता है । वस्तुतः यह सर्वात्म स्वरूप थे, जन्मजात योगी, ज्ञानी तथा सिद्ध थे । यही कारण था सबके आकर्षण का । वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ने लगे । सभी शान्ति, सन्तोष तथा प्रसन्नता का अनुभव करते थे, इन्हें देखकर । लौकिक-वैदिक सभी संस्कार विधिकत् किए गए ।

कुछ बड़े होने पर समव्यस्क बालकों के साथ क्रीड़ा करने लगें । क्रीड़ा में भी अन्य बालकों से इनमें विशेषता थी । वर्षा ऋतु मे कभी आम्र-वृक्ष के ऊपर चढ़ जाते और वृक्ष की शाखा को हिलाते, आम्र टूट कर नीचे गिरते, फिर सभी मिलकर खाते थे । कभी जामुन-वृक्ष के फलों की गिराते और सब बालकों के साथ खाते । जब किसी को आते देखते, जो वहाँ से सभी भाग जाते । लोग इनके पिता से प्रेमपूर्ण उलाहना देते और हस देते थे । वस्तुतः इनकी चर्चा करना ही सबको अभीष्ट था ।

कुछ और अधिक अवस्था होने पर यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हुआ । पिता-माता तथा पितामही का जैसा अधिक प्रेम था, वैसा ही इच्छा भी थी कि पूर्ण विद्वान बनें । इसीलिए प्रसिद्व विद्या-केन्द्र काशी मे इन्हें अध्ययन के भेजा गया । उस समय काशी में स्वनामघन्य श्री स्वामी विशुद्वानन्द सरस्वती, श्री पं० सूधकर द्विवेदी आदि अनेक विद्वान थे । उनके चरणों में बैठकर विद्याध्यन किया । बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि गुरू-द्वारा एक बार पढा देने पर, तुरन्त ग्रहण कर लेते थे । वहाँ वेद, वेदान्त, व्याकरण, छनद, ज्योतिष, शिक्षा, कल्प, निरूक्त, पूर्वोत्तर मीमांसा आदि षट् दर्शन, ब्राह्मण, आरण्यक, अपनिषद् और इतिहास, पुराणादि का पुर्णतः अध्ययन किया । गणित-फलित ज्योतिष, व्याकरण और वेदान्त तो आपके अतीव प्रिय विषय रहे ।

प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी विशुद्वानन्द सरस्वती जी महाराज, उस समय मठाधीश थे । इनके त्याग, तप, योग, ज्ञान और वैराग्य से सभी प्रभावित थे । विद्यार्थी जीवन में बालक, रघुनन्दन प्रसाद का समय भी इनके चरणों में व्यतीत था । वहाँ गम्भीर वेदान्तादि के प्रसंग श्रवण करते थे और स्वामी जी महाराज की सूक्ष्म चेष्टाओं पर दृष्टि रखते थे । सम्भवतः यही संस्कार आगें प्रजि फलित हुए । श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी महाराज ज्ञान वैराग्य की मूर्ति थे । किन्तु मठाधीश होने से ऐश्वर्य भी कम नही था । साधारण दृष्टि से ऐश्वर्यवान् प्रतीत होते थे, वैराग्यवान नही । किन्तु उनके अन्तःकरण में ब्रह्य ऐश्वर्य का लेश भी नही था, पूर्ण विरक्त थे । काशी नरेश आदि सभी उनमें श्रृद्धा करते और चरणों में बैठकर, अपने को धन्य मानते थे । एक बार काशी नरेश के यहाँ, महाराज दरभंगा पधारे । दोनों नरेश श्री स्वामी जी महाराज
के दर्शनार्थ पधारे । दरभंगा नरेश ने श्री स्वामी जी के यहाँ राजसी वैभव देखा । उनके मन में शंका हुई कि राजसी वैभव और विरक्ति का क्या सम्बंध ? जिसके पास इतना वैभव है, वह विरक्त नही हो सकता । मन में इसी प्रकार के विचार उठ रहे थे । श्री स्वामी सरस्वती विशुद्धानन्द सरस्वती जी महाराज को प्रणाम कर , दोनों नरेश बैठ गए ।

"महाराज जी । वैराग्य के क्या लक्षण है?" दरभंगा नरेश ने प्रश्न किया । वह किसी प्रकार अपना समाधान न कर पाते थे । जिज्ञासा भी नहीं थी ।

“ वैराग्य के लक्षण जानना चाहते हो?” स्वामी जी ने उत्तर दिया । वह दरभंगा नरेष के मन की स्थिति जान रहे थे, कि इन्हें हमारे वैराग्य पर संदेह है । इसीलिए उन्होनें स्वयं प्रश्न सूचक शब्द कहे ।

“हाँ, महाराज !” संक्षिप्त उत्तर था दरभंगा नरेश का ।

“इनके सिर पर दश-दश जुते लगाओ” श्री स्वामी जी ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी । विचित्र उत्तर था वैराग्य का ।

“ ....” सभी मौन, स्तब्ध रह गए श्री स्वामी जी के आदेश को सुनकर, किसी भी शिष्य को साहस न होता था । दोनों नरेश भी आश्चर्य चकित थे ।

“इनके सिर पर जूते लगाओं” पुनः गम्भीर वाणी से आदेश दिया श्री स्वामी जी ने । ख्याति प्राप्त नरेश के सिर पर जूते लगाने का साहस शिष्यों को न होता था । नरेश बुद्धिमान थे । वह स्वंय ही जूतों के स्थान पर जाकर, नतमस्तक हो बैठ गए । तब शिष्यों ने आदेश का पालन किया । श्री स्वामी जी की चरणपादुका लेकर उन्होंने, नरेश क सिर पर दस-दस बार स्पर्श कर दी ।

दोनो नरेश पुनः श्री स्वामी जी महाराज के चरणों में उपस्थित हुए और वही प्रश्न फिर किया- ‘महाराज जी ! अब कहें वैराग्य के लक्षण ? दोनों की श्रृद्धा थी महाराज श्री पर ।”

“राजन । वैराग्य का प्रथम लक्षण देखा आपने । हमें न आपसे रोग है, न आपके धन-वैभव से । हम निरपेक्ष है । न हमें आपसे भय है, न आपके शासन से ।” कह कर मौन हो गए श्री स्वामी जी महाराज ।

“भगवान । अभी समाधान नही हुआ और भी कहिए ? ” पुनः प्रश्न था नरेश का ।

वैराग्य का द्वितीय लक्षण यह देखो” सुवर्ण के पीकदान की ओर संकेत करते हुए कहा- जिस धन, सुवर्ण आदि के प्राप्ति के लिए तुम दिन-रात्रि प्रयत्न करते हो । उसके उपभोग में आसक्त और रक्षा के लिए चिन्तित रहते हो, उसमें हम थूकते है । न हमें प्राप्ति की चिन्ता, न प्रयत्न और न रक्षा में दन्तचित्त है । आसक्ति किचिंत भी नही है ।यही वैराग्य का लक्षण है । उत्तर था महाराज श्रीका “वैराग्य का द्वितीय लक्षण यह देखो” सुवर्ण के पीकदान की ओर संकेत करते हुए कहा - जिस धन, सुवर्ण आदि के लिए तुम दिन-रात्रि प्रयत्न करते हो । उसके उपभोग में आसक्त और रक्षा के लिए चिन्तित रहते हो, उसमें हम थूकते है । न हमें प्राप्ति की चिन्ता, न प्रयत्न और न रक्षा में दंतचित्त हैं । आसक्ति किचिंत भी नहीं है । यही वैराग्य का लक्षण है ।” उत्तर था महाराज श्री का ।

“भगवान! आपका कथन समुचित है । अभी और सुनने की इच्छा है ।” पुनः प्रश्न था दरभंगा नरेश का । उनकी इच्छा थी शास्त्र प्रतिपादित वैराग्य लक्षण-श्रवण की ।

“राजन ! इस समय इतना ही पर्याप्त है ।” कहकर मौन हो गए और स्वस्वरूप में समाधिस्थ हो गए । दोनों नरेशों ने प्रणाम किया और चले गए । वैराग्य का व्यावहारिक स्वरूप प्रदर्शित किया, श्री स्वामी जी महाराज ने ।

विद्यार्थी-जीवन में विद्याध्ययन, उच्चकोटि के महात्माओं का सत्संग । ज्ञान, भक्ति, सदाचार, तप, त्याग और वैराग्यादि का व्यावहारिक रूप काशी में प्राप्त किया । सही संसार मानस-पटल पर अंकित रहे और समय पर अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित तथा फलित हुए ।

गृहस्थ-जीवन

विद्याध्ययन के अनत्तर काशी से जन्म-भूमि छोटी पाली आ गए । समायनुसार सत्कुल में आपका में आपका विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ । जीवन सानन्द व्यतीत हो रहा था । ज्योतिष में आपकी प्रसिध्दि दूरातिदूर तक हो गई थी । सुदूर स्थानों से लोग आते थे और मनोवांछित फल-प्राप्त करते थे । इससे धनाजर्न भी प्र्याप्त होता रहा । इष्ट-मित्रों के साथ हास्य-विनोद में जीवन सानन्द चल रहा था । पाली के प्रसिद्ध रईस थे ठाकुर शंकरबख्श सिंह । उनसे घनिष्ट मित्रता थी । दो शरीर, एक जीव वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी । ठाकुर शंकरबख्श सिंह का भी विवाह हो गया था । द्विरागमन का समय था । तब ठाकुर साहब ने कहा- "क्या सभी कर्म हमें ही करने होगें ?" द्विरागमन अब इन्हें कराना होगा । श्री रघुनन्दन प्रसाद की ओर संकेत हुए कहा और हुआ भी ऐसा ही । इतनी अभिन्नता थी दोनो में ।

समयानुसार एक पुत्री का जन्म हुआ । पश्चात दो पुत्र हुए प्रथम का श्रीधर और द्वितीय का सुधाकर नामकरण हुआ । श्री पण्डित रघुनन्दन प्रसाद का नित्य का कार्यक्रम था, स्थान, पूजन आदि से निवृत्त होकर बैठक में आना और स्लेट पर लिखना- "अमुक व्यक्ति, अमुक समय आयेंगें, अमुक प्रश्न पूछेगें और उसका उत्तर अमुक है । आदि-आदि । निश्चित समय पर व्यक्ति आता, वही प्रश्न करता । उससे कहते- "स्लेट पर उत्तर लिखा है, देख दो ।"

एक दिन धरना ग्राम के एक व्यक्ति आए । वह आपके सम्पर्क मे ंरहते थे । वही के एक काछी जाति के व्यक्ति के कमर की जंजीर खो गई थी । वह काछी को लेकर आये और प्रश्न किया "पण्डित जी, इनके कतर की जंजीर खो गई है, पता नही कौन ले गया है ? बतलाने की कृपा करिए ।"

"भाई! दे दो इसकी जंजीर, तुम्ही ने ही है" पण्डित जी ने किंचित विचार कर उत्तर दिया वस्तुतः जंजीर उसने ही ली थी । वह बहुत लज्जित हुआ, क्षमा-रचना की और जींज दे दी ।

एक दिन एक ठाकुर साहब आए । उनके यहाँ सुवर्ण, चांदी के आभूषण और नकद रूपयों की चोरी हो गई थी । उन्होंने आकर सब कहा । पण्डित जी ने उत्तर दिया- "पहले हमारा पारिश्रमिक दो, तब बतलायेगें ।" ठाकुर साहब ने दे दिया, क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था । तब कहा- तुम्हारे ग्राम के बाहर जो तालाब है, उसके निकट वृक्ष के नीचे तुम्हारा सब सामान गड़ा है । जाकर ले आओ और अमुक व्यक्तियों ने चोरी की है ।" ठाकुर साहब ने नीचे सब वस्तुयें प्राप्त कर लीं । चोर भी पकड़ लिए गए । चोरों के ऊपर मुकदमा चल रहा था । सजा होना निश्चित था तभी चोरों के परिवार के अन्य व्यक्ति आए और पण्डित जी से प्रार्थना की - पण्डित जी, यदि जेल की सजा हो गई । तो हम लो बर्बाद हो जायेगें । ऐसी कृपा कर दीजिए कि सब लोग सजा से बच

जाए । पहले हमारा पारिश्रमिक दो- पण्डित जी ने कहा । पारिश्रमिक प्राप्त होन पर पण्डित जी ने कहा - ठीक है, जाओ सब छूट जायेगें ।" और हुआ भी ऐसा ही ।
कानपुर में एक प्रसिद्ध अंग्रेज व्यापारी रहता था । वह इंग्लैण्ड का निवासी था । उसकी स्त्री इंग्लैण्ड में थी और उसके उदर में बालक था । बहुत समय से कोई समाचार न मिला था । अंग्रेज चिन्तित था । उस समय वायुयान तथा टेलीफोन आदि की आज जैसी सुविधायें न थी । समुद्र द्वारा ही आवागमन होता था इसमे बहुत समय लगता था वह निराश था । तब कुछ लोगों ने कहा- पालीग्राम में एक पण्डित जी रहते है, वह सब सत्य बातें बतला देते हैं । अंग्रेज अपनी टमटम में बैठकर पाली पहुँचा । उस समय मोटर आदि वाहन यहाँ प्रचलित न हुए थे ।
उधर पण्डित जी स्लेट पर सब लिखकर रख चुके थे । अपरान्ह काल था । नौकर ने लोटे मे जल दिया और पण्डित जी शौचादि के लिए चल दिए । उनके जाने के पश्चात् वह अंग्रेज पण्डित जी कि निवास स्थान पहुंचा । तब शौचादि से निवृत्तकर पण्डित जी बैठक में आये, तो अंग्रेज का बैठे देखा । उसने अपनी मनोव्यथ्था और स्त्री के समाचार जानने की बात कही तब जो स्लेट में लिखा था, वह पण्डित जी ने सुना दिया। अंग्रेज का ठीक वही प्रश्न था और उत्तर था - अंग्रेज का ठीक वही प्रश्न था उत्तर था - तुम्हारी स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ है । कल १२ः३५ बजे तुम्हें तार प्राप्त होगा ।" अंग्रेज को विश्वास न हो रहा था । क्योंकि इसी प्रकार की भविष्यवाणी कई लोगों से सुना चुका था और सभी मिध्या हुए थी । किन्तु सहसा अविश्वास भी नही करता था क्योंकि पहले का लिखा स्लेट पर उसने देखा तथा सुना था । ऐसी स्थिति में उसने यही सोचा कि पण्डित जी को अपने साथ कानपुर ले चला जाए । आप हमारे साथ कानपुर चलिए । उसने कहा । पण्डित जी ने पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकृति दे दी ।
टमटम में अपने स्थान पर पण्डित जी को बैठाया और स्वयं अंग्रेज नौकर के स्थान पर बैठ गया । नौकर को पैदल जाने का आदेश दिया । पण्डित जी अश्वयुक्त टमटम में बैठकर, अश्वारोही के समान अश्व का संचालन कर रहे थे । सभी लोगों की दृष्टि उन पर थी । कानपुर पहुंच गए । अंग्रेज ने अपने बंगले कर एक तख्त को पवित्र जल से धुलवाया और उस पर ऊनी कालीन बिछा दिया । स्वंय वही विश्राम किया पण्डित जी ने । प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त हुए । मध्यान्ह बारह बजे तक कोई समाचार न आने से अंग्रेज ने चिन्तित होकर कहा-पण्डित जी । अभी तक कोई समाचार नहीं आया । अभी बहुत समय है ३५ मिनट का, पण्डित जी ने उत्तर दिया । ठीक १२ः३५ बजे पोस्ट मैन तार लेकर आया । उसमें पुत्रोत्पति का समाचार था । अंग्रेज तार पढ़कर, प्रसन्नता से खिल उठा । उसने कहा- अब हमें प्रत्यक्ष हुआ कि भारत में भविष्य दृष्टा । पण्डित जी ने रेशमी वस्त्र तथा पाँच सौ भेंट किए । फिर सादर विदा किया ।

बम्बई में ज्योतिष का चमत्कार

पण्डित जी की कीर्ति कौमुदी सुदूर प्रान्तों तक फैल गई थी । दूर-दूर से निमन्त्रण आते रहे । एक बार बम्बई से तार आया । तार था इनके विद्यागुरू श्री सुधाकर द्विवेदी का । शीध्र बम्बई बुलाया गया था । स्वीकृति दे दी और पहुंचने के समय का तार दे दिया । बंबई स्टेशन पर श्री द्विवेदी जी तथा वेंकटेश्वर प्रेस के स्वामी उपस्थित थे । गाड़ी से उतरकर श्री द्विवेदी जी तथा वेंकटेश्वर प्रेस के स्वामी उपस्थित थे ॱ गाड़ी से उतरकर श्री द्विवेदी जी को प्रणाम् किया, उन्होंने आर्शीवाद दिया । पण्डित जी के निवास के लिए स्थान दिया गया । फिर भी द्विवेदी जी ने कहा- सेठ खेम राज श्री कृष्णदास ने एक नवीन भवन बनवाया । विधिपूर्वक, सोस्ताह गृह-प्रवेश किया । किन्तु उसी अवसर पर एक अप्रिय घटना हो गई । इनके ज्येष्ठ पुत्र का निधन हो गया । सेठ जी को चिन्ता और जिज्ञासा है कि ऐसा क्यों हुआ ? सेठ जी के अनेक ज्योतिषियों को पुत्र का जन्म-पत्र दिखाया और प्रश्न किया । किन्तु उनके उत्तरों से सेठ जी का समाधान नही हुआ । क्योंकि सेठ जी भी ज्योतिष के विद्वान थे । अब यह कार्य तुम्हे करना है । उन्होने सेठ से भी कहा -इनका परिश्रमिक सौ रूपयें प्रतिदिन तुम्हे देना होगा ॱ यह कहकर श्री द्विवेदी जी काशी चले गए ।

बम्बई में 'वेकटेश्वर प्रेस' संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन का केन्द्र है । इनके स्वामी श्री खेमराज श्रीकृष्णदास ने प्रेस से प्रभूत धनोपार्जन किया । संसकृत के विद्वानों से ग्रंथ तैयार कराते व्याख्या लिखाते तथा अनुवाद कराते थे । विद्वानों का आदर,सत्कार करते थे । उनमे आमन्त्रण पर, उस समय ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान वहाँ उपस्थित थे । सभी विद्वानों की सभा में सेठ जी ने प्रश्न किया "पुत्र की क्यों हुई?" जन्म पत्र में कोई भी मारक योग नही था । क्रमानुसार सभी विद्वान उत्तर दे रहे थे, किन्तु सेठ जी को कोई संतोष न हुआ । अन्त में बैठे थे पाली के पण्डित जी । इनसे भी प्रश्न यही प्रश्न था । इन्होने भवन का मानचित्र (नक्शा) मांगा । मानचित्र के अनुसार भवन की लम्बाई-चौड़ाई आदि का निरीक्षण किया और कहा - "भवन ठीक नही बना है । इन्जीनियर को बुलाओ" इंजीनियर आया । पण्डित जी ने भवन की त्रुटि बतलाई । उसने देखा और स्वीकार किया कि भूल हो गई ।

"इस भवन क भीतर अमुक स्थान पर कोइ लोहें की वस्तु रखी है ।" पण्डित जी ने गणित किया और यह प्रश्न किया सेठ जी से ।

"हाँ, लोहे की अलमारी रखी है ।" सेठ जी का उत्तर था ।

"आलमारी के नीचे, भूमि में साढ़े तीन हाथ अन्दर, एक मरे हुए श्वान की समस्त अस्थियाँ है । इसके कारण ही आपके पुत्र की मृत्यु हुई है ।" पण्डित जी ने कहा ।

इस उत्तर को सुनकर कोई आश्चर्य-जनित दृष्टि से इनकी ओर देख रहा था, कोई उपहास कर रहा था। किन्तु पण्डित जी अविचल स्थित में थे ।

"श्वान की अस्थियों और पुत्र की मृत्यु से क्या सम्बंध ?" एक पण्डित ने प्रश्न किया ।

"श्वान के अस्थि-पंजर से दूषित वायु (विषैली गैस) उत्पन्न होकर बाहर निकल रही है । विष के प्रभाव से मृत्यु होना संभव है" वैज्ञानिक तर्कपूर्ण उत्तर था पण्डित जी का । सभी ने वह स्थान देखा । वहाँ भूछिद्र की एक रेखा दिखाई दी । उसी से गैस निकलती थी पण्डित जी के आदेशानुसार मजदूर बुलाये गए । आलमारी अलग रखी गई तथा भूमि खोदी जाने लगी ।" तीन हाथ गहरी खोद लेने पर हमें सूचना देना" यह कह कर पण्डित जी अपने निवास स्थान चले गए । जब भूमि तीन हाथ गहरी खुद गई, तब मजदूरों ने सूचना दी । पण्डित जी, सेठ जी तथा अन्य कुछ सज्जन वहाँ आयें । मजदूरों से पण्डित जी ने कहा- "सावधानी पूर्वक खोदना" केवल आधा हाथ ही नीचे खोदना शेष है । खोदने पर अस्थ्यिाँ दिखाई पड़ी । किन्तु उन पर आघात लग चुका था, इससे वह बिखर गई थी । अस्थियां निकाली गई । कुछ लोग कहने लगें - "यहाँ पहले मृत व्यक्ति गाड़े जाते थे । इसलिए मनुष्य की अस्थियां होगीं, श्वान की नहीं ।" किन्तु पण्डित जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा- "यह श्वान की ही अस्थियां है । इन्हें किसी पशु-विशेषज्ञ के पास परीक्षा के लिए भेज दो ।" सेठ जी ने ऐसा ही किया ।

उस समय बम्बई के उच्च्व चिकित्सालय में प्रधान डाक्टर थे - डाक्टर जीवराज मेहता । वहाँ अस्थियाँ परीक्षा के लिए भेज दी गई । सेठ जी से पण्डित जी ने कहा- सेठ जी । श्वान की अस्थियां है, इसमे संदेह नहीं । परीक्षा की रिपोर्ट आने में कई दिन लग जाएगें । हमें विदा कर दीजिए । सेठ जी ने कहा - पण्डित जी ! आप अभी यही रहें । जब तक आप रहेगें, तब तक आपकी निश्चित दक्षिणा मिलती रहेगीं । पण्डित जी रूक गए ।

तीन दिन बाद रिपोर्ट मिली । सम्पूर्ण श्वान-अस्थियों का प्रमाण पत्र था । पण्डित जी के पाण्डित्य की प्रशंसा होने लगी । सेठ जी भी पूर्ण संतुष्ट थे । वेंकटेश्वर समाचार में इस घटना का विवरण दिनांक १३ दिसम्बर १९०७ ई के अंक में प्रकाशित हुआ था । यह समाचार पत्र ८० वर्ष से अभी तक वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हो रहा है । इस समय पण्डित जी की आयु लगभग ३० वर्ष की थी ।

उसी समय बम्बई की एक घटना और हुई । सेठ जी के साले के यहाँ चोरी हो गई, रत्न जड़ित बहुमूल्य आभूषण चल गए। वह बहुत चिन्तित थे, घबड़ाये हुए सेठ जी के पास आए और चोरी की बात की । सेठ जी ने पण्डित जी ने प्रश्न किया । पण्डित जी ने गणित कर कहा- "चोर घर का नौकर है । वह पुना की ओर जाने की तैयारी में है । आप पुलिस के साथ तुरन्त सेन्ट्रल स्टेश्न जाइए । वहाँ गाड़ी में चढ़ते हुए, आप उसे पा लेगें । लाल रंग के वस्त्र में सभी आभूषण उसके बगल में दबे होगें ।" सेठ जी तथा

उनके साले साहब पुलिस को लेकर स्टेशन पहुंचे । गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी थी । नौकर एक पैर गाड़ी पर रखकर चढ़ना ही चाहता था, कि यह लोग पहुंच गए और उसे पकड़ लिया । सेठ जी के साले ने पण्डित जी को सौ रूपयें भेट किये, किन्तु पण्डित जी ने स्वीकार नही किए ।

बम्बई में निवास के समय सेठ जी के पुत्र ने कहा - ‘‘पण्डित जी ! हम इस समय कहाँ जा रहे है और वहाँ जाकर क्या करेंगे? पण्डित जी ने गणित किया और लिखकर रख दिया कहा- इसमें सब लिखा है, जब लौटकर आना, तब देख लेना । ’’ वह कागज बन्दकर अन्य व्यक्ति के पास रख दिया गया । लौटकर कर जब कागज ने पढ़ा, तो पूर्ण रूप से वही लिखा था, जहाँ वह गए थे और जो कुछ किया था । इसी तरह के आश्चर्य कार्य ज्योतिष-द्वारा पण्डित जी करते थे । पण्डित जी बम्बई से अपने ग्राम पाली आ गए ।

दो चक्रों का निर्माण

पण्डित जी गृहस्थाश्रमोचित्त-कर्म करते थे और अन्य लोगों को भी प्रेरणा देते थे । 'श्रीमद्भागवत् महापुराण' का प्रवचन करते । आपकी प्रवचन शैली अद्भुत थी । मार्मिक विश्लेषण आकर्षक शब्द योजना, दृष्टान्त और प्रवाहमयी कथा से श्रोता मन्त्रमुग्ध से होकर, कथा सुनते थे । शंका समाधान भी स्वयं करते । कुछ लोगों का कहना था - "पण्डित जी का किसी देवता की सिद्धि है, " कुछ कहते - यह तो पूर्वजन्म के योग भृष्ट पुरूष हैं, किसी कारण इनका जन्म हुआ है । जो कुछ भी हो, पण्डित जी असमान्य पुरूष रहे । लक्ष्मी, एश्वर्य, मान तथा प्रतिष्ठा ने कभी उनका संग नही छोड़ा ।

इसी समय आपने दो चक्रों का निर्माण किया - सविता चक्र और पृथ्वी चक्र । इन चक्रों द्वारा किसी भी ईसवी वर्ष के दिन की तारीख और तारीख के दिन को जाना जा सकता है । यह चक्र ईसवी सन् १ से आगामी अनन्त वर्षों तक के लिए है । दोनों चक्र संलग्न है :-

इन चक्रों से तारीख या दिन की विधि इस प्रकार है - जिस सन् की तारीख या दिन देखना चाहें, उस सन् की सैकड़ा की संख्या पृथक लिखें और शेष ९९ तक की संख्या पृथक । जैसे सन् १९७५ अपैल १६ को कौन दिन था ? जानने के लिए ९०० सैकड़ा पृथक् रखिए और ७५ पृथक । १९०० में ४०० का भाग दे, जो शेष रहे, उनके शून्यों को छोड़ दें, शेष अंक में २ घटाए । १९०० में ४०० का भाग देने पर ३०० शेष रहे, दोनो शून्यों को छोड़ दिया, ३ शेष रहे, ३ से २ घटाने पर १ शेषर रहा । जो ७५ पृथक रखे थे, उसमें २८ का भाग देना चाहिए (सैकड़ा से पृथक जो भी अंक होगें, सभी में २८ का भाग दिया जाएगा) । २८ का भाग देने पर, शेष रहे १९ । प्रथम सैकड़ा में भाग देने पर और २ घटाने पर जो १ शेष रहा था, उसका तात्पर्य है 'सवितचक्र' की अक्षरों से नीचे की पंक्ति । इसी प्रकार यदि दो शेष रहे तो दूसरी पंक्ति समझनी चाहिए । इस प्रथम पंक्ति मे देखना चाहिए कि १९ की संख्या कहाँ है, क्योंकि दहाई में २८ का भाग देने पर १९ शेष था । प्रथम पंक्ति के नीचे १९ के संख्या के ऊपर 'र०' अक्षर है । यह 'र०' ध्रवाक्षर हुआ । यह ध्रुवाक्षर १९७५ वर्ष पर्यन्त रहेगा । अब हमें देखना है कि १६ अप्रैल को कौन दिन था ।

पृथ्वी चक्र, में देखिए अपैल कि पंक्ति मे "र०' ध्रुवाधर कहाँ है । देखने पर ६ठी पंक्ति में 'र०' ध्रुवाक्षर मिला उसी सीध में मंगलवार, बुधवार मिले । दिनों के सामने ही मंगलवार ही मंगलवार को १५ और बुधवार को १६ तारीख मिली । सन् १९७५, १६ अप्रैल को बुधवार था ।

(39 अ)

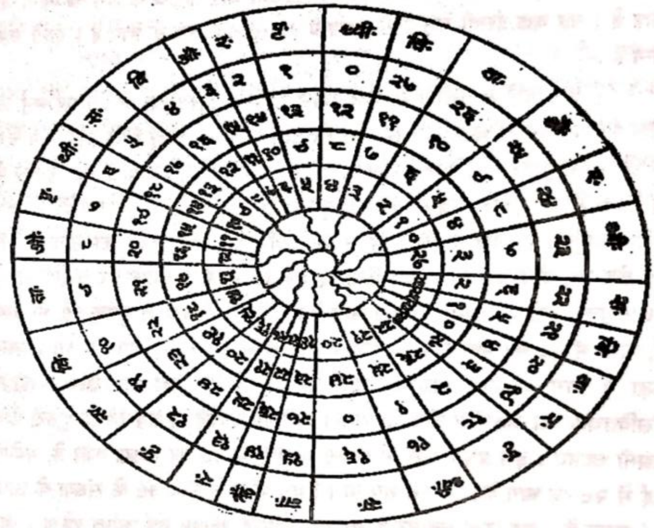

सविता चक्रम–1

(39 ब)

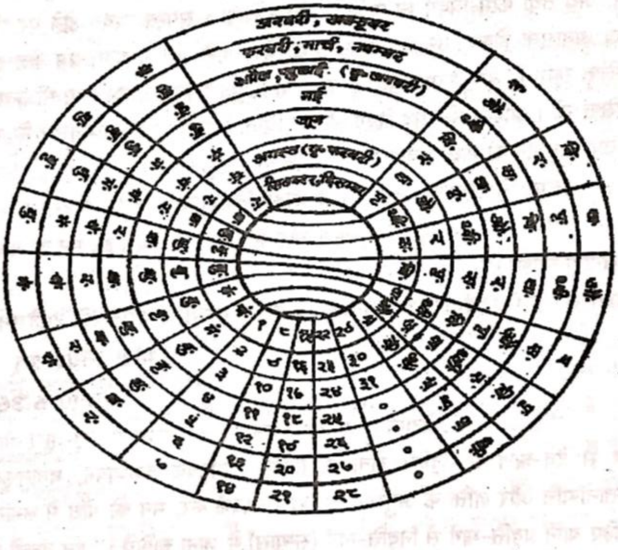

पृथ्वी चक्रम–2

यदि सैकड़ा में ४०० का भाग देने पर शून्य शेष रहे, तो उसे ४ मानकर २ घटाना चाहिए । दहाई या ईकाई की जो पृथक संख्या है, उसमे २८ का भाग देने पर यदि शुन्य रहे तो जनवरी और फरवरी की वृद्धि संज्ञा होती है उस समय वृद्धि फरवरी या वृद्धि जनवरी में देखना चाहिए । पण्डित जी ने इसे समझाने के लिए सन् १९०६, १ मई मंगलवार लिखा है । इससे ज्ञात होता है कि यह चक्र इसी दिन बनाया गया होगा । उस समय पण्डित जी की ।

तीन ऋण और उनसे मुक्ति

पण्डित जी गणित तथा फलित ज्योतिष में अद्वितीय थे । आपने गृहस्थ में धर्म, अर्थ, तथा काम-त्रिवर्ग का पूर्णतः सम्पादन किया । समस्त ऐश्वर्य होने पर भी आप अनासक्त होकर, उनका उपभोग करते थे । जैसे जल में पद्म-पत्र जल से निर्लिप्त रहता है, वैसे ही आप धन, सम्पत्ति, पत्नी, पुत्र परिवार में रहते हुए भी उनसे अलिप्त रहे । आपका मन अब किसी और ही चिन्ता में लगा था । शास्त्रानुसार त्रिवर्ग के उपरान्त, मन को मोक्ष में लगाना चाहिए । भगवान् मनु का आदेश है।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशशेप । (मनु० ६.३५)

"..................... देव-ऋण, पितृ-ऋण और ऋषि-ऋण से उऋण हो, मन को मोक्ष में लगाना चाहिए ।

अथीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोन्पाघघर्मतः ।
इष्ट्वाच शक्तितो यज्ञैमनो मोक्षे निवेशयेत् ।।

(मनु० ६.३६)

"................ वेदाध्ययन से ऋषि-ऋण, सन्तानोत्पादन से पितृ-ऋण और यज्ञ से देव-ऋण से उद्धार होता है, तात्पर्य विधिपूर्वक, वेदाध्ययन, धर्मानुकूल सन्तानाप्पत्ति और शक्ति के अनुसार यज्ञ का सम्पादक कर, मन को मोक्ष में लगाना चाहिए यानि प्रवृति-मार्ग (सन्यास) में जाना चाहिए ।" इन वाचनों के अनुसार पण्डित जी का मन प्रवृत्ति-धर्म से ऊपर हो गया । एकान्त में आत्म-चिन्तन होने लगा । विवेक -वैराग्यादि सम्पन्न थे ही । स्वल्प काल में ही आत्म-साक्षात्कार हो गया । अब तो उन्हें गार्हस्थ जीवन भर प्रतीत हो गया । अखण्ड आत्मानन्दानुभूति में गृह-कार्य बाधा, जान पड़ते थे । उन्होंने शीघ्र ही अपनी एकमात्र कन्या का कन्यादान किया और गृह त्याग दिया ।

उत्तरादर्ध

पण्डित रघुनन्दन प्रसाद जी गृह-त्याग कर, मुक्ति-क्षेत्र काशी पहुंचे। चतुर्थाश्रमी सन्यासियों का प्रमुख केन्द्र काशी है। विद्या-केन्द्र तथा मोक्ष-केन्द्र का समन्वय है काशी। विद्यार्थी-जवीन में यहाँ विद्याध्ययन कर चुके थे। अब परमवीतराग श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी महाराज ब्रह्मलीन हो चुके थे, उनके शिष्य थे श्रीमत्परमहंस, परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी गोपालनन्द सरस्वती जी महाराज। इन्ही से विधिवत् सन्यासाश्रम की दीक्षा ली। शिखा, सूत्र तथा नाम रघुनन्दन प्रसाद का परित्याग कर दिया। गुरू-द्वाता प्रदत्त योगपट था- स्वामी आत्मानन्द सरस्वती।

सन्यासियों में दस नाम

शाकःर सम्प्रदाय में दस नाम प्रसिद्ध हैं- तीर्थ, आश्रम, वन, आरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, पुरी तथा भारती। आदृय श्रीशंकराचार्य ने चार वेदों के अनुसार, चारों दिशाओं मे चार मठों की स्थापना की। पूर्व दिशा में ऋग्वेद, दक्षिण में यजुर्वेद, पश्चिम में सामवेद और उत्तर की स्थिति मानी जाती है। यज्ञ-मण्डप मे इसी के अनुसार द्वार का निर्माण होता ह। । श्री शंकराचार्य जी महाराज ने भी इसी प्रकार नियम में अनुसार चारों दिशाओं में कठ स्थापित किए। अपने प्रमुख शिष्यों को मठाधीश का पद दिया। दक्षिण दिशा 'श्रंगेरी मठ' में श्री सुरेश्वराचार्य अधीश बने। पश्चिम दिशा में 'द्वारका मठ के आचार्य हुए श्री पद्मपादाचार्य और उत्तर दिशा 'ज्योतिर्मठ' के श्री त्रोटकाचार्य मठाधीश हुए। गोवर्द्धन मठ का महावाक्य है - 'प्रज्ञानं ब्रह्म' और पद हैं - वन तथा आरण्य। श्रंगेरी मठ का महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' और पद सरस्वती पुरी तथा भारती है। द्वारका मठ का महावक्य 'तत्वमसि' और पद तीर्थ तथा आश्रम है। इसी प्रकार प्रकार ज्योतिर्मठ का महावाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म' और पद-गिरि, पर्वत तथा सागर है। कलियुग में धर्म का ह्रास जानकर, शंकरावतार श्री शंकराचार्य जी ने मठो की स्थापना की। उद्‌देश्य यह रहा कि अपने-अपने क्षेत्र में आचार्य, वेद-शास्त्र प्रतिपादित वर्णाश्रम-धर्म की शिक्षा देते रहें। श्री शंकराचार्य जी ने मठाधीशों का आदेश दिया-'आलस्य त्याग कर, सर्वदा भ्रमण करते हुए जनता को शास्त्रोक्त सदाचार का उपदेश करते रहना चाहिए। श्री पं० रघुनन्दनप्रसाद जी अवस्थी यजुर्वेदी थे। इसीलिए श्रंगेरीमठ की परम्परा में दीक्षित हुए। अपने-अपने वेदानुसार दीक्षा लेना सर्वथा समुचित होता है।" सरस्वती का अर्थ हैः -

स्वर ज्ञानरतो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः।
संसार सागरासार हन्तासौहि सरस्वती।

(श्रंगेरी मठामान्य)

“................ जो स्वर ज्ञान में रत, स्वर विषय का विशेष विवेचक तथा विद्वानों में श्रेष्ठ है । इसी प्रकार असार-संसार में रहता हुआ भी, सारभूत ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला ही ‘सरस्वती’ है ।

चार प्रकार का सन्यास

सन्यासी चार प्रकार के होते है - कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस । जो अपने परिवार से पृथक एकान्त में निवास करता है । शिखा, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, कौपीन, पादुका, त्रिदण्ड, काषायवस्त्र धारण करता है और अपने पुत्र के यहाँ भिक्षा करता है तथा गायत्री जपता है । वह कुटीचक, सन्यासी कहा जाता है । इसी प्रकार शिखा आदि धारण किए जो तीर्थ में भ्रमण करते है, तथा भिक्षा-वृत्ति से जीवन यापन करते हुए आत्मदर्शनाभिलाषी है, वह ‘बहूदक’ कहे जाते हैं । कमण्डलू, भिक्षा-पात्र कन्था, कौपीन, वस्त्र तथा एक दण्ड-धारण करते है । एक बार आठ ग्रास भोजन करते है । गायत्री-जप, अध्यात्म-चिन्तन, तीर्थ-सेवन और कृच्छ, चान्द्रायणादि व्रत करते है, वह हंस है जो शिखा, यज्ञोपवीत परित्याग कर, गायत्री आदि कर्म का परित्याग करते है, कौपीन, काषायवस्त्र, कन्था, पादुका, रूद्राक्ष-माला और वेणु-दण्ड धारण करते है । जिनका भिक्षा-पात्र उदर या कर है, वह परमहंस सन्यासी कहे जाते है । कुटीचक से बहूदक श्रेष्ठ है, बहूदक से हंस और हंस से परमहंस सन्यासी श्रेष्ठ है । श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज परमहंस सन्यासी रहे ।

सन्यास के तीन भेद

विद्वत्-सन्यास, विविदिषा-सन्यास और आतुर-सन्यास-यह सन्यास के तीन भेद हैं । मृत्यु के पूर्व, जीर्णावस्था में जो सन्यास लिया जाता है उसे ‘आतुर-सन्यास’ कहा जाता है । इससे मृत्युपरान्त सद्गति होती है और दूसरे जन्म में ज्ञान-वैराग्योदय होता है । अपना धर्म समक्षकर, मोक्ष के लिए जो सन्यास लिया जाता है वह ‘विविदिषा-सन्यास’ है। इसमें शम, दामादि पूर्वक, वेदान्तशास्त्र का अध्ययन और महावाक्य द्वारा ब्रह्म तथा आत्मा की एकता जानना मुख्य तात्पर्य है । ब्रह्म तथा आत्मा की एकता के ज्ञान से अज्ञान-निवृत्ति होता है और ब्रह्मात्मा-दर्शन हो गया है, उसका ‘विद्वत-सन्यास होता है । गृहस्थ में कर्म की बहुलता के कारण आत्मानंद में अधिक काल तक स्थिति नही होती है । इससे-मुक्ति के आनन्द से वंचित रहता है । जीवन-मुक्ति के आनन्द के लिए ही ज्ञानी सन्यासी लेता है । विद्वत-सन्यास सर्वश्रेष्ठ सन्यास है ।

आरती
श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य

श्री १००८ अवधूत स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज

ऊ जय शिव भव त्राता । स्वामी जय शिव जग त्राता ।

देव दया निधि सद्गुर पूरण-श्री आत्मानन्द दाता । ऊँ जय शिव०

तुम प्रभु पूर्ण पावन सत्गुरू-सेवक हितकारी । स्वामी सेवक०

अनन्त नरोत्तम नाथ दयामय-महिमा बहु न्यारी ।। ऊँ जय शिव०

अवधूत स्वरूप अनूप वदन प्रभू-शरणागत राजे । स्वामी शरण०

सुन्दर सितार कमल कर सोहे-मुख बन्सी बाजे ।। ऊँ जय शिव०

वेद पुराण शास्त्र मुख वाणी-सत पथ दर्शायो । स्वामी सत पथ०

अज्ञान तिमिर दुःख दोष निर्वायो मन चित्त हर्षायो ।। ऊँ जय शिव०

सर्व सिद्ध नवनिधि भण्डारी-सर्व व्याधि हर्ता । स्वामी सर्व०

गंग प्रिये भक्तन सुख दाता-नाश करो जड़ता ।। ऊँ जय शिव

लाख काज भक्तन पत राख्यो-दया दृष्टि कीजो । स्वामी दया०

धर्म अर्थ मुक्ति पद दाता-शरणी मोहे लीजो ।। ऊँ जय शिव०

दिव्यासन पद्यासन सुन्दर-मणि मुक्ता सोहे ।। स्वामी मणि०

दीन दयाल भक्त प्रिय सद्गुरू-श्री पद कर दोए ।। ऊँ जय शिव०

सेवक शरण दुःख हरण नमामि-भव बन्धन हारी । स्वामी भव०

पतित उद्धार गावें नित आरती-भारती नर-नारी ।। ऊँ जय शिव०

ऊँ जय शिव भव त्राता-स्वामी जय शिव जग त्राता ।

देव दया निधि सतगुरू पूर्ण-श्री आत्मानन्द दाता । ऊँ जय शिव०

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज

श्री स्वामी जी की आयु और विद्वत-सन्यास

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज का विद्वत-सन्यास था । विद्वत-सन्या प्रतिपादक श्रुति में कहा हैः -

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणाश्याश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायथ भिक्षचर्य चरन्ति ।

(बृह०उ०३.५.१)

उस इस आत्मा को ही जानकर, ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणां तथा लोकैषणा से प्रथक होकर, भिक्षाचर्या से विवरण करते है । श्रुति ने ब्राह्मणाः पद से सूचित यिा कि सन्यास में ब्राह्मण का ही अधिकार है, क्षत्रिय आदि का नही । आत्मानं विदित्वा से यह कहा कि आत्मा को जानकर तात्पर्य यह कि 'मैं समस्त संसार-धर्मो से शून्य-नित्यतृप्त परब्रह्म हूँ, यह जानकर सन्यास ग्रहण करते है । ज्ञान काल में ही पुरूष मुक्त हो जाता है । उसका कोई कर्तव्य शेष नही रहता । अतः प्रारब्धानुसार जब तक शरीर की स्थिति है, तब तक उसकी जीवन रहता है । किन्तु होता मुक्त ही है । इसीलिए उसे जीवन-मुक्त कहते है । जीवन्मुक्ति का आनन्द सर्वोपरि तथा विलक्षण है । उसे प्राप्त करने के लिए ज्ञानी सन्यास ग्रहण करते है ।

विद्वत-सन्यास ग्रहण करने के समय श्री पण्डित रघुनन्दन प्रसाद जी अवस्थी की आयु मात्र ३३ वर्ष थी । इस विषय में स्वयं उसके द्वारा रचित श्लोक प्रमाण है :-

अवस्थि वंशोभव औपमन्युर्वरिष्ठ वासिंष्ठ कुलाग्रगण्यः ।
ज्वालाप्रसादस्य तनूज एषो ब्रह्मर्षिवर्था रघुनन्दनाराव्यः ।।
सोऽपित्रयस्त्रिंशति में मितेऽब्दे काश्यांपरिव्रज्य गुरूपदेशात् ।
ऋषित्माप्तोऽपिपटिष्ट आत्मानन्दाभिघोऽयं कृतयोगपट्टः ।।

वशिष्ठ प्रवरान्वित, उपमुन्य गोत्रीय अवस्थी वंश में उत्पन्न श्री ज्वालाप्रसाद के पुत्र ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ रघुनन्दन हुए । उन्होनें तेंतीस वर्ष की आयु की काशी में सन्यास लेकर, ज्ञान प्राप्त होने पर भी गुरू-पदेश द्वारा ज्ञान-प्राप्त किया और आत्मानन्द योगपट्ट धारण किया । इससे पूर्णतः निश्चित होता है कि ऋषि होते हुए ही ऋषित्व-प्राप्त किया । 'ऋषि सर्वज्ञमित्यथं के अनुसार जिसने संसार के कारण ब्रह्म को अभिन्न रूप से जान लिया हो वह ऋषि है, सर्वज्ञ है । इससे विद्वत-सन्यास और ३३ वर्ष की आयु सिद्ध होती है ।

मठाधीश पद अस्वीकार

श्रीमत्परमहंस स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज गुरू-स्थान में ही निवास करते थे । गुरू-सेवा, गुरूपदेश-श्रवण और आत्मानन्द में निमग्न रहते थे । श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, श्री स्वामी गोपालानन्द सरस्वती जी इनकी सेवा, निस्पृहता विद्वत्ता और आत्मानिष्ठा से अतीव प्रभावित थे । वह ऐसे ही योग्य शिष्य की खोज में थे । उनकी इच्छा थी कि ऐसा ही त्यागी, विद्वान तथा आत्म-ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति मठाधीश बने । उनको उत्तराधिकारी मिल गया था । गुरूजी ने एकाधबार संकेत भी किया, किन्तु यह मौन रहे । इन्होनें विचार किया- गुरू जी अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते है । किन्तु मठाधीश बनने पर, मठ पर प्रबन्ध तथा आगन्तुको के सेवा आदि प्रपश्व में दिन व्यतीत होगें । आत्मानन्द रसानुभूति में विध्न ही है । गृह प्रपश्व का परित्याग किया । यहाँ मठ-प्रपश्व गले बंध रहा है । गुरू जी की आज्ञा न मानना भी उचित नही । अतः अन्य युक्ति करनी चाहिए । अपने मन में निश्चय कर लिया ।

प्रातःकाल सभी शिष्य संदण्ड गुरू जी को प्रणाम करते है । गुरूजी को प्रणाम किया । गुरूजी ने इनकी ओर देखा और साश्चर्य प्रश्न किया-“दण्ड कहाँ है?”

“भगवान् । दण्ड का परित्याग कर दिया ।” नीचे दृष्टि किए उत्तर दिया ।

“क्यों परित्याग किया?” गुरूजी ने कुछ उच्चस्वर में कहा ।

“......................... दृष्टि नीचे और वाणी मौन थी ।”

“उत्तर दो, दण्ड क्यों परित्याग किया” पुनः गुरूजी का प्रश्न था ।

“प्रभो ! दण्ड की आवश्यकता नही समझी, इसीलिए परित्याग कर दिया । जो होना था हो गया । क्षमा कीजिए ।” उत्तर था दृढ़ स्वर में ।

“त्यक्त होने पर तुम किसी का सन्यास-दीक्षा न दे सकोगे ।” गुरू जी ने कहा ।

“ हाँ, भगवन !” उत्तर दिया और प्रणाम कर वहाँ से चल दिए ।

सन्यास के पश्चात काशी में गुरूजी के समीप लगभग डेढ़-दो वर्ष निवास किया यदि मठाधीश-पद पर आसनी होने कपर प्रश्न सम्मुख न होता, तो सम्भव है काशी में और निवास होता । दण्ड-परित्याग करने पर मठाधीश नही बना जा सकता, यही नियम है । सम्वत् १९६९ विक्रमीय का समय था और स्वामी की आयु थी ३५ वर्ष की । अब आप ब्राह्मण मण्डल में विचरण करने लगे ।

जहानाबाद में

जहानाबाद जनपद फतेहपुर में सर्वप्रथम आये श्री सत्यनारायण मन्दिर में । वहीं नित्य दर्शन के लिए पण्डित काशीदीन अग्निहोत्री जाते थे । श्री स्वामी जी को यह स्थान रूचिकर न हुआ । तब श्री अग्निहोत्री जी ने कहा - "एक स्थान हमारा है, यदि अनुकूल समझें, तो वहाँ निवास करिए ।" स्थान देखा तो पसन्द आ गया, फिर वही निवास होने लगा। अग्निहोत्री जी के निवास स्थान के सामने ही वह स्थान था । सुन्दर, स्वच्छ कमरा, पीछे मनोहर पुष्पवाटिका, मल्ल-युद्ध के लिए अखाड़ा और आगें मधुर जल का कूप था । नित्य सत्संग होने लगा । विद्वान तथा भक्तजन आते और श्री स्वामी जी से अतीव सन्तुष्ट रहते । श्री स्वामी जी विद्या-प्रेमी, विनोदी, किंचित क्रोधी, समाधि निष्ठ और विरक्त स्वभाव के थे । सन्ध्या-समय लोग एकत्रित होते, ठण्डाई बनाते-पीते और फिर सभी के संग शौचादि होने कभी किसी और चल पड़ते, तो कभी किसी ओर ।

आषाढ़ मास के अन्तिम दिन थे । वर्षा नही हो रही थी । खेत सूख रहे थे, कृषक चिन्तित थे । अनेक भक्तों के साथ श्री स्वामी जी, 'कालेश्वर महादेव' में थे । यह स्थान निवास स्थान से पश्चिम की ओर वन में है । प्राकृतिक सौन्दर्य देखने योग्य है । चारों ओर दीवाल, भीतर निम्ब वृक्ष और वही आकाश के नीचे विराजमान शंकर जी । सम्मुख एक लघु सरोवर, वृक्ष और खेती है चारो ओर । किसी ने कहा - "वर्षा नही हो रही है, कठिन परिस्थिति है" ।

"देखा आकाश में वह मेघ है, वर्षा होगीं" आकाश की ओर देखते हुए श्री स्वामी जी ने कहा ।

"ऐसे मेघ नित्य ही आते-जाते है, पर वर्षा नही होती" सभी लोगों ने कहा ।

"अच्छा, यह तो अवश्य वर्षा करेगें" मेघों की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा । सभी ने आकाश की ओर देखा । चारो तरफ मेघ छा गए और देखते-देखते वर्षा होने लगीं । वर्षा खूब हुई, सभी विस्मित और प्रसन्नति थे । साथ में थे कानपुर निवासी श्री पण्डित दुर्गादत्त जी बाजपेई । उन्होंने कहा- "वर्षा से श्रवण का आनन्द हो रहा है, यदि कही झूला होता, तो अत्याधिक आनन्द होता ।"

"रस्सी के बिना कैसे झूला हो सकता है?"

"लो, इसकी रस्सी बनाओ" कहकर स्वामी जी ने तुरन्त अचला उतार दिया और फाड़कर स्वयं भी रस्सी बंटने लगे रस्सी बनी, निम्ब-वृक्ष में झूला पड़ा और श्री स्वामी जी झूलने लगें । श्री दुर्गादत्त झूला-सूलाते थे तथा स्वामी जी झूल रहे थे । झूलते समय श्री स्वामी जी अनेक पद्मों की रचना कर, सस्वर गान करने लगें । चारो ओर आनन्द सागर भरा मालूम पड़ रहा था ।, सभी उसमें निमग्न थे ।

वहाँ से लौट पड़े । स्थान पर आकर लोग आपस में श्री स्वामी जी ने सुना और कहा, "अब रहा अचला, ऐसे ही रहेगें ।" कुछ दिन कौपीन मात्र धारण कर रहे ।

दिगम्बर फिर फालतू

बस्ती से बाहर अतीव रमणीय स्थान है - रामतलाई । लघुसरोवर, निर्मल जल और वही प्राचीन भव्य भवन है अब श्री स्वामी जी यहाँ निवास करने लगें । शताधिक भक्त एकत्रित थे, कुछ अभी आ रहे थे और कुछ जा रहे थे । आषाढ़ पूर्णिमा गुरू-पूजा-दिवस जो था । सभी के सम्मुख श्री स्वामी जी ने घोषणा की-' अब कौपीन नहीं धारण करेगें" और कौपीन खोलकर रख दी । सभी आश्चर्यचकित रह गए । अब नग्न रहने लगे, दिगम्बर थे । मौन भी हो गए । न किसी से वार्तालाप, न भोजन-पान की अभिलाषा । जो कोई भोजन करा देता, तो कर लेते, अन्यथा आनन्द निमग्न स्थिर रहते । यह क्रम चातुमार्स पर्यन्त रहा । सम्वत् १६७० विक्रमीय की यह घटना है ।

कान्यकुब्ज ब्राह्मण मण्डली एकत्रित थी । मध्यप्रदेश से भी अनेक भक्त आये थे । उन लोगों ने कहा- "स्वामी जी, आपने एक बार कहा था कि यह शरीर ब्राह्मणों का है " श्री स्वामी जी ने सिर हिला कर स्वीकार किया । जब हमारा शरीर है, तो इस पर आपका कोई अधिकार नही । अधिकार हमारा है, हम जैसा चाहेगें, वैसा रखेगें, ब्राह्मणों ने कहा । इस पर स्वामी जी मौन हो गए । वस्त्र मंगवाया गया और श्री स्वामी जी को पहना दिया गया । अब श्री स्वामी जी कहने लगें - "लो, अब हम पालतु बन गए । न हमे वस्त्र की चिंता, न भोजन की ।"

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों से रक्षित शरीर कभी इधर विचरण करता कभी उधर । एक स्थान पर अधिक दिनों तक कभी नही रहें । ऐसे अवसर भी आए, जब तीन-चार दिनों तक न अन्न के दर्शन हुए, न जल के । किन्तु कभी भी किसी से अन्न-जल के लिए इच्छा नही प्रकट की । यदि कोई जल को भी पूछता, तो उत्तर होता कि "नही" ।

कन्नौज में शास्त्रार्थ

जनपद उन्नाव, कन्नौज तथा मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों में विचरण किया । बैतुल में अधिक समय व्यतीत किया । वहाँ एकान्त वन में रहते थे । सदाचार, भक्ति तथा ज्ञानोपदेश करते थे । दुराचार, मद्य, मॉस आदि सेवन का निषेध करते थे ।

आप कन्नौज की ओर थे । सराय मीरा मे कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का निवास है । वहाँ, कन्नौज में और उसके आस-पास उसके आपके प्रवचन हुए । श्री स्वामी जी के भक्त पण्डित गयेश्वर प्रसाद मिश्र मुनसिफ-अदालत कन्नौज में कार्य करते थे । उनमें श्री पण्डित गणेशदत्त जी ने कई शंकाये की और इनका समाधान श्री स्वामी जी द्वारा चाहते थे । उन्होंने उत्तर दिया- "आप स्थान तथा समय निश्चित कर लिखें, वहाँ श्री स्वामी जी आकर समाधान कर सकते हैं । पण्डित गणेशदत्त, जी ने सनातन धर्म मन्दिर में सायंकाल ४ बजे समय निश्चित किया । यह पत्र श्री गयेश्वर प्रसाद मिश्र का तीन बजे

मिला । वह श्री स्वामी जी के पास सराय मीरा पहुँचे और सब बातें बतलाई । श्री स्वामी जी तुरन्त चल दिए । कई प्रतिष्ठित तथा विद्वानों के साथ श्री स्वामी जी सनातन धर्म मन्दिर कन्नौज पधारे । शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-द्वारा करना निश्चित हुआ और निर्णय उपस्थित पर छोड़ दिया गया । यह शास्त्रार्थ सम्वत् १६७० विक्रमीय, २२ जनवरी सन् १६१३ ई० को हुआ ।

पं० गणेशदत्त का प्रश्न- "आष्टादश पुराण अनादि काल से हैं या वेदव्यास रचित ५००० वर्ष से है? यदि वेद व्यास रचित पाँच हजार के स्वीकार किए जाए, तो इनका उल्लेख अनादि श्रुति में नही होना चाहिए था । किन्तु श्रुति-स्मृति में पुराणों का उल्लेख है । इसीलिए वह अनादि है ।

श्री स्वामी जी का उत्तर- "पुराण में ज्ञान विषय है, वह अनादि है । परन्तु उनकी छन्दोबद्ध रचना सत्यवती नन्दन व्यास जी द्वारा की गई पुराणों में महाभारत के समय की कथायें हैं, श्रीकृष्ण आदि का वर्णन है । इसीलिए व्यास कृत हैं और ५२०० वर्ष से पहले के नहीं है ।

द्वितीय प्रश्न - "लिपि (अक्षर लिखना) अनादि है या इसका आरम्भ पीछे से हुआ ? यदि अनादि नही तो महर्षियों का आरम्भ संसार कैसे होता था ।

उत्तर- "वेदों का नाम 'श्रुति' है अर्थात् जिसका सुनकर ज्ञानकर हो, उसे श्रुति कहते हैं । इससे सिद्ध होता है कि वेदों के प्रादुर्भाव के समय लिपि न थी किन्तु यदि किसी को वेदों के पहले लिपि मानने में सन्तोष होता हो, तो मेरी कोई हानि नही"

तृतीय प्रश्न-"परिपश्यन्ति धीरः" श्रुति के अनुसार परमात्मा को चारों ओर देखते हैं और पूर्व पदों के अनुसार परमात्मा अदृश्य है । अदृश्य होने से पुरूष चारों ओर कैसे देखते हैं? इसलिए परमात्मा अदृश्य नही, मूर्तिमान है ।"

उत्तर-"धीर अर्थात् ज्ञानी पुरूष परमात्मा का दर्शन ज्ञान-चक्षुओं से करते हैं । यही श्रुति का अर्थ है ।"

उत्तर-"इदं बिष्णुविवक्रमें, तथा 'तद्विष्णोः परमं पद्य' आदि यज्ञ-मन्त्रों में विष्णु का अर्थ सूर्य और वामनं आया है, नारायण नही । इसीलिए सूर्य अर्थ किया है ।"

पचंम प्रश्न - "मांस का उल्लेख वेद, स्मृति तथा पुराणों में है । ऐसी स्थिति में मांस खाने वाले को अधार्मिक कहना सर्वथा अनुचित है । मां, मदिया और मैथुन आदि सृष्टि से चले आ रहे है । श्राद्ध, यज्ञ और मुधुार्क में तो बिना मांस के काम नही चलता । यद्यपि मांस खाना शास्त्रों में वर्णित है और मांस न खाना उत्तर है ।"

उत्तर-"पण्डित जी स्वंय स्वीकार करते है कि मांस खाना शास्त्रों में वर्जित है और मांस खाना उत्तम है । ऐसी स्थिति में अधिक कहना अनावश्यक है यदि आपके अनुसार विधिवत् मांस-भोजन स्वीकार भी कर लिया जाए, तो भी श्राद्ध, यज्ञ, विवाह आदि में मांस का प्रयोग आज कल नही होता है । इसलिए उत्तम ही है । इसके अतिरिक्त यज्ञादि

में मांस का प्रयोग या भोजन के लिए बाजार से कसाई के यहाँ से लेकर खाना शास्त्र में कहाँ लिखा है ?"

श्री स्वामी जी अनेक वेद-मंत्र प्रमाण में उपस्थित किए और युक्तियां दी । उपस्थित सभी

जनता श्री स्वामी जी के उत्तर के उत्तर से प्रभावित हुई और पं० गणेशदत्त को पराजित घोषित किया गया ।

एक बार श्री स्वामी जी विचरण करते हुए 'ऊगू' जनपद उन्नाव में पधारे । बसन्त ऋतु, चैत्र मास और सम्वत् १६७१ था । महानारायण शुक्ल आदि अनेक भक्तों के साथ गंगा-स्थान करने गए । गंगा के दक्षिण तट पर निवास करते थे स्वामी ज्ञानश्रम जी महाराज । श्री महाराज । श्री ब्रदीप्रसाद टंडवा-निवासी ने कहा -"स्वामी जी ! आपके दर्शनों के स्वामी ज्ञानाश्रम जी इच्छुक है ।" तब श्री स्वामी जी ने कहा- "महानारायण, तुम गंगा में उतर कर देखों, जल कितना गहरा है ?" उस समय वहाँ गंगा जी बहुत गहरी थी प्रवाह में वेग भी था । कोई व्यक्ति जा नही सकता था । किन्तु श्री स्वामी जी के आदेश पर बिना विचार किए, वह श्री गंगा जी में उतर पड़े । मल्लाह तथा अन्य लोग पुकार-पुकार कर रोक रहे थे- "गंगा जी बहुत सकरी है । आगें मत जाओं, नही तो डूब जाओगे ।" किन्तु उन्होनें कुछ भी ध्यान न दिया । आगें बढ़ते गए, देखा गंगा जी घुटनों तक गहरी थीं । तब श्री स्वामी जी के साथ सभी व्यक्ति श्री गंगा जी में उतर पड़े । आगें-आगें श्रीस्वामी जी चल रहे थे, उनके पीछे सभी भक्त-मंडली जा रही थी । पहुंच गए गंगा जी के उस पार । किन्तु कही भी घुटनों से अधिक गहरा जल नही निकला ।

गंगा जल में ही क्रीड़ा तथा विनोद होता रहा । एक-दुसरे को छूते और भागते रहे । क्रीड़ा में संध्या हो गई । सभी फिर लौट आए । मार्ग में वहाँ के गंगा पुत्र आदि लोग कर रहते थे - "आज कल गंगा जी बहुत बढ़ी हुई हैं ।" इस पर सब लोगों ने कहा - "हाँ घुटनों तक गहरी है ।" वह लोग सुनकर आश्चर्य करने लगें । वास्तव में गंगा जी बहुत गहरी है । किन्तु यह श्री स्वामी जी का चमत्कार थाा कि उनके तथा भक्तों के लिए जानु पर्यन्त ही रही ।

धराखोह में चमत्कार

मध्य प्रदेश में श्री स्वामी जी के एक भक्त थे श्री शिवचरण मिश्र । उन्होंने धराखोह नामक भीषण वन में ठेका लिया था । श्री स्वामी जी की इच्छा धराखोह-भ्रमण की हुई । श्री शिवचरण मिश्र, उनकी स्त्री तथा साली के संग वन में पहुँच गए । श्री सीताचरण दुबे एम०ए० वकील होशंगाबाद से श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ वहीं पहुंच गए । वकील साहब यदा कदा ईसा के अद्भूत चरित्रों का गुण-गान करते थे । वह ईसा को ईश्वरावतार कहते, ईसा-धर्म को सत्य का मार्ग करते और करते कि "मैं ईसाई क्यों न हो जाऊ?" श्री स्वामी जी ने हंसकर कहा - "धैर्य धारण करो, सत्य ही खोज में लगें रहो । कभी सन्तुष्ट हो जाओगें ।

श्री स्वामी जी तथा श्री सीताचरण दुबे वन में भ्रमण कर रहे थे, मार्ग-दर्शक था एक गोंड । प्राकृतिक सौन्दर्य ही छटा चारो ओर छिटक रही थी । प्रसन्न मन से भ्रमण तथा विनोद करते, सन्ध्या-समय विश्राम स्थल में आ गए । सीताचरण जी भोजन बनाने का प्रबंध करने लगे । समीप ही एक गोंड रहता था । वह भी भोजन बना रहा था । किन्तु लकड़ी गीली होने से जलती नही थी । वहीं सीताचरण जी की लकड़ियाँ जल रही थी । श्री स्वामी जी ने गोंड को दुःखी देखकर कहा- अग्निदेव, तुम भी धनी तथा निर्धनों में विषम-व्यवहार कर रहे हो । बेचारा गरीब गोंड चूल्हा जलाते-जलाते दुःखी हो रहा है । किन्तु तुम नही जलते और धनी सीताराचण के यहाँ जल रहे हो । अब कुछ ऊपर उठ जाओ ।" जैसे ही श्री स्वामी जी के मुख से ऊपर उठ जाओं शब्द निकला, वैसे ही अग्नि एकदन प्रज्वलित हो गया । और उसकी झोपड़ी से २-३ गज दूर ही दूसरी झोपड़ी में सीताचरण जी भोजन बना रहे थे । वह चिन्तित हुए कि अब यहाँ भी अग्नि आकर सब भस्म कर देगीं । श्री स्वामी जी की झोपड़ी के अन्दर जाकर बैठ गए । अग्निदेव तुरन्त शान्ज हो गए । इस घटना से सीताचरण जी अत्याधिक प्रभावित हुए और कहने लगे- "अब हमने प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्ज किया, हम कृतकृत्य हये ।" यह श्री स्वामी जी की एक लीला मात्र थी । गोंड को सपरिवार भोजन कराया गया और दूसरी झोपड़ी भी बनवा दी गई । यह लीला सम्वत् १९७९ माघ या फागुन मास की है ।

पारसमणि-लीला

"वाक्य सुधा" नामक एक वेदान्त का ग्रन्थ है । इस पर श्री स्वामी जी की संस्कृत तथा हिन्दी में विशद टीका है । इसकी भूमि में पं० गदाधर प्रसाद शुक्ल ने एक घटना का उल्लेख किया है । घटना सम्वत् १९७१ ज्येष्ठ मास की है । शुक्ल जी बैतूल मे रहते थे, वहीं श्री स्वामी जी भी थे, एक दिन 'पारसडोह' नामक स्थान में ताप्ती नदी स्थान करेन गए । श्री स्वामी जी के साथ गदाधर प्रसाद शुक्ल, रामरत्न शुक्ल, राजबहादुर दुबे,

शंकर दयालु बाजपेयी, अमृतलाल पाण्डे तथा मुरलीधर शुक्ल आदि कई सज्जन थे । सभी ने नदी-स्नान किया । भस्म-धारण करने के लिए चुनखड़ी देखने लगें । श्री स्वामी के हाथ में एक और पत्थर था । गोल आकार बताशे के बराबर, रंग स्वर्ण जैसा सुनहरा और अग्नि के समान प्रकाश था उसका । श्री स्वामी जी अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे । किन्तु उसे हाथ में लिए थे । सभी को आश्चर्य हो रहा था । वही एक इमली के वृक्षक की छाया में सभी बैठ गए और श्री स्वामी जी से कहा "आप विश्राम कर लीजिए । श्री स्वामी जी सो गए । पत्थर मुट्ठी में दबा था । अमृतलाल ने उसे निकालने इमली के वृक्ष की छाया में सभी बैठ गए । और श्री स्वामी जी से कहा- "आप विश्राम कर लीजिए" श्री स्वामी जी सो गए । पत्थर मुट्ठी में दबा था । अमृतकाल ने उसे निकालने की चेष्टी की, पर मुट्ठी खुली नहीं । सभी की उत्सुकता थी पत्थर देखने की । श्री स्वामी जी के जागने पर, अपनी उत्सुकता कही । श्री स्वामी जी ने पत्थर दे दिया । विलक्षण पत्थर था ऐसा किसी ने कभी नही देखा था । प्रकाश इतना था । कि नेत्र की दृष्टि ठहरती न थी । वहाँ से चलकर पहुँचे, 'जाबरा' ग्राम में । वहाँ कुछ सज्जनों ने पूछाँ- पारसडोड से क्या लाऐ ?"

"श्री स्वामी जी पारस पत्थर लाए है शंकरदयालु ने उत्तर दिया ।

"अच्छा ऐसा ही सही सहजभाव से श्री स्वामी जी ने कहा ।

"तो फिर क्या लोहे की छड़े निकाल लाउँ ? शंकर दयालु ने पूछा ।

" तुम्हारी इच्छा है, तो ले आओ ।" श्री स्वामी जी ने स्वीकृति दे दी । किन्तु वह हंसता हुआ शौच चला गया ।

"स्वामी जी । यह तो हमें मिलना चाहिए अमृतलाल ने कहा ।

"नही, एक बार तुम्हें कुछ मिल चुका है, गदाधर प्रसाद ने विरोध किया ।

"जिसके भाग्य में होगा, उसे मिलेगा" गदाधर प्रसाद ने उत्तर दिया । किन्तु अमृतलाल का मन उसी में था । वह बार-बार उसकी ही चर्चा कर रहा था ।

"स्वामी जी को परेशान न करो, चुप रहो" राजबहादुर ने कहा । श्री स्वामी जी साक्षी भाव से सभी वार्ता सुन रहे थे । अब उन्होने कहा-"तुम लोग इसके लिए आपस में लड़ते हो, लो यह गया" कहकर मुट्ठी खोल दी । सबके सामने आकाश की ओर चला गया ।

जब रूपयों की वर्षा हुई

सम्वत् १९७२ और कार्तिक मास । श्री स्वामी जी 'धमना' जनपद कानपुर में थे । श्री चन्द्रभूषण चौबे महाराज श्री के अनन्य भक्त थे । वह अपने बाग में एक चबूतरा बनवा रहे है । इनके ज्येष्ठ भ्राता श्री महादेवप्रसाद के साथ श्री स्वामी जी भी बाग में पहुँचे । "अब अन्यत्र विचरण करना चाहिए" श्री स्वामी जी ने कहा । इस पर श्री

चन्द्रभूषण ने प्रार्थना की - स्वामी जी । चबूतरा तैयार हो रहा है । एक दिन यहाँ गाना होना चाहिए । चन्द्रभूषण जी गान विद्या में अतीव हो रहा है । एक दिन यहाँ गाना होना चाहिए । चन्द्रभूषण जी गान विद्या में अतीव निपुण थे । श्री स्वामी जी तो गान विद्या में पारंगत थे ही ।

दोनो भाईयों में कुछ रूपयों की चर्चा होने लगी । श्री स्वामी जी ने भी सुना । कुछ लीला करने की इच्छा हुई । आकाश से खन्न-खन्न करता हुआ, वहीं एक रूपया गिरा । दूसरा, तीसरा, चौथा तथा पांचवा रूपया भी इसी तरह गिरा । फिरा सुवर्ण गिन्नी गिरी । श्री स्वामी जी वहाँ से उठकर भागे और कहने लगें - तुम कैसे पुरूष हो, रूपयों का स्मरण करते हो । यही अच्छा बात नही । वह रूपयें और गिन्नी गिरी । श्री स्वामी जी वहाँ से उठकर भागे और कहने लगें - तुम कैसे पुरूष हो, रूपयों का स्मरण करते हो । यह अच्छी बात नही । वह रूपयें और गिन्नी अभी तक श्री चन्द्रभूषण के पास है । बिल्कुल नए, मानों अभी टकसाल से बनकर निकले हो ।

मृत स्त्री जीवित हुई

उन दिनों श्री स्वामी जी जहानाबाद में थे । सेवा में थे श्री चन्द्रभूषण चौबे । श्री स्वामी जी से गान विद्याध्ययन करते, उपदेश सुनते और प्रेम से सेवा करते थे । धमना से उनकी धर्मपत्नी बीमार हो गई । वहाँ से सूचना आई । किन्तु उन्होंने उपेक्षा कर दी । उनके भाई बुलाने आए, परन्तु वह नहीं गए । श्री स्वामी जी के प्रति उनकी भक्ति अत्याधिक थी । अविनाशी तत्व का परित्याग कर, विनाशी स्त्री, पुत्र, परिवार की ओर जाना अनुसित है । यह भावना उनके मन मे थी । स्त्री की दशा बिगड़ती हुई । अन्ततः शरीर का परित्याग कर दिया । उनके भाई अन्तिम संसार के लिए वस्त्रादि लेने जहानाबाद आए । श्री चन्द्रभूषण से अन्तिम संस्कार करने के लिए कहा । किन्तु वह निर्लिप्त भाव से स्थिर रहे । तब उनके भाई ने श्री स्वामी जी से निवेदन किया । श्री स्वामी जी ने चन्द्रभूषण से कहा - "जाओ, स्त्री का दाह संस्कार करो ।" आपको छोड़कर, कहाँ जाए । उत्तर दिया उन्होंने । तब स्वयं श्री स्वामी जी चलने का प्रस्तुत हुए । धमना पहुँचे । वहाँ देखा स्त्री मृत पड़ी है । परिवार के सदस्य रूदन कर रहे है । श्री स्वामी जी स्त्री के समीप गए और हंसते हुए कहने लगे- अब बहुत हो गया उठा ? लो यह तुम्हारे आ गए है । किन्तु वहाँ कोई हो, तो सुने और उठे ।

क्या तुम देख नही रही कि तुम्हारे पति के भी पति तो खड़े है और तुम पड़ी हो । अब शीघ्र उठ जाओ । यह कह श्री स्वामी जी ने अपना चरण से स्पर्श कर दिया । चरण-स्पर्श होते ही तुरन्त उठ पड़ी । जैसे बिजली का बटन दबाते ही प्रकाश होने लगता है, वैसे ही चरण स्वर्श कराते मृत शरीर में जीवन आ गया । सभी सज्जनों को अतीव आश्चर्य

हुआ । किन्तु श्री स्वामी जी के अंतरंग भक्तों को कोई आश्चर्य नहीं यह अद्भूत कार्य था । किन्तु सि़द्ध योगी के लिए खेल मात्र है।

भाष्य और ग्रन्थ रचना

उपर्युक्त अलौकिक घटना से श्री स्वामी जी की ख्याति चारों ओर बढ़ती लगी । कामना लेकर लोग आने लगें । तब आप दूर मध्यप्रदेश के बैतूल स्थान में चले गए और वहाँ निवास करने लगे । कई वर्षो तक वही रहें । वहाँ ''वाक्य सुधा'' नामक ग्रन्थ की संस्कृत तथा हिन्दी में भाष्य किया और ''आत्मानन्दामृतम्'' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की । ''वाक्य सुधा'' अत्यन्त उपादेय साधकों के लिए माननीय है । इसमें अनेक प्रकार साधन, ब्राह्य तथा आन्तरिक समाधि और समाधि का हृदयग्राही वर्णन है । कुछ विद्वान आद्य श्री शंकराचार्य की कृति कहते है, कुछ महामुनि श्री विद्यारण्य की । किसी की भी रचना हो, ग्रन्थ परमोपयोगी है । इस पर श्री स्वामी जी का भाष्य सुवर्ण में सुगन्ध जैसा है । इसका प्रकाशन सम्वत् १९७३ में हुआ ।

अवच्छेद-अवच्छेदक

वाक्य सुधा के एक श्लोक के हिन्दी भाष्य का कुछ अंश यहां दे रहे है-

अवच्छेदः कल्पितः स्यादवच्छेद्यन्तु वास्तवम् ।
तस्मिजीवत्वमारोपाद्ब्रह्मत्वं तु स्वभावतः ।।

वह परमात्मा सम्पूर्ण आकाश के समान सर्वव्यापक, निरन्तर, उपाधिरहित परब्रह्म हैः वही यह (जगत्) उपाधिसहित, नाम रूप में स्थित, व्यवहारयुक्त, परिपूर्ण अपने स्वरूप परमात्म भाव से पृथक नही, पूर्ण ही है । किन्तु जगत् परमात्मा से उत्पन्न होता है । यद्यपि नाम रूप से विलक्षण प्रतीत होता है, तथापि पूर्णत्व (परमात्म भाव) को नही छोड़ता । परिपूर्ण परमात्मा का परिपूर्ण भावरूप स्वरूप एकरसता का पाकर, विद्या-द्वारा जगत्-भाव को दूर कर, पूर्ण अनन्तर, अब्राह्य, प्रज्ञानधन, एकरस स्वभाव, केवल ब्रह्म ही अवशेष रहता है । अतएव अवच्छेदक जगत कल्पित है और जिसमें कल्पित है वह अवच्छेद परमात्मा की वास्तव में सत्य है । इस अवच्छिन्न परमात्मा में प्राण आदिक उपाधियें अवच्छेदक (ढ़कने वाली) हैं । उप समीपे आधीयते स्थाप्तये यः स उपाधिः जो समीप मे स्थापित की जाए वह उपाधि है । जैसे स्फाटिक मणि के समीप जपाकुसुम रखा हो, तो स्फाटिक मणि लाल रंग की प्रतीत होती है । यद्यपि वह लाल रंग की नही है, तथापि जपाकुसुम (दुपहरिया का पुष्प) की समीपता से लाल रंग उसमे प्रतीत होता है । जपाकुसुम स्फाटिक मणि के समीप होने से उपाधि है । इसी प्रकार प्राण आदि कल्पित उपाधि ही अवच्छेदक है, वह

अवास्तव है । अवच्छेद्य चिदात्मा ही वास्तव में सत्य है । जैसे पैर का आभूषण यदि सर्पाकार हो ओर उसको पैर में पहनकर, चरण को सर्प से लपेटा हुआ माने, तो समारोपित सर्प अवास्तक है । वास्तव में आभूषण युक्त ही चरण है । फिर सर्प भ्रान्ति दूर होने पर, आभूषण भी अवास्तव है । आरोपित (कल्पित) श्रंगार है । वास्तव में तो चरण है । इसी प्रकार जीव में जगत का स्वत्व-परत्व अभिमान, सर्प सदृश आरोपित होने से अवास्तव है, किन्तु जीव वास्तव है । जीव मे भी मायामयत्व कल्पित भ्रममात्र आरोपित मोह अविधाकृत आवरण अवास्तव है । सच्चिदानन्द, सर्वदा शान्त, पूर्ण, ब्रह्म, साक्षी, आत्मा ही वास्तव है । अतएव वास्तव परमात्मा में अवच्छेक उपाधि के अविवेक से उत्पन्न भ्रममात्र के आरोप से जीव भाव है । स्वभाव से तो पूर्ण रूप परब्रह्म ही सत्य है । उसमें परिच्छिन्न जीव भाव किच्चन्मात्र नहीं हैं द्वैत भाव की प्रतीत तो समस्त साधारण जीवों को होती है । परन्तु शास्त्र से जिसकी बुद्धि निर्मल होती है, वह अधिकारी पुरूष अपने स्वरूप का बोध पाकर मै सच्चिदानन्द अद्वैत है । इस प्रकार अपरोक्ष अद्वैत होता है । अतएव अद्वैत ही सत्य शास्त्र का सिद्वान्त है । संस्कृत-भाष्य तो अतीव गम्भीर तथा विद्वानों के लिए मननीय है ।

द्वितीय ग्रन्थ ''आत्मानन्दामृताम्'' में दशश्लोक हैं । इसमें ''श्री सरस्वती समाख्याय व्याख्या'' संस्कृत में है और हिन्दी में उसकी छन्दोबृद्ध है । अन्त में यज्ञोपवीत-निर्माण-विधि यज्ञोपवीत धारण प्रयोग और गायत्री विषयक है दुलर्भ सामग्री है । सभी रचना श्री स्वामी जी की लेखनी से प्रसुत हैं । इसका प्रकाशन सम्वत् १९७५ में हुआ ।

जगत की रचना

प्रणव के अ, उ, म अक्षरों से स्थूल सूक्ष्म तथा कारण जगत् उत्पन्न होता है । आकार से कैसे जगत बनता है, इसका कथान आत्मानन्दामृतम् में हिन्दी के एक सवैया में इस प्रकार हैः-

विश्व आकार भयोज्यहिं भांति सुनो चितशखि विवेक हिया में ।
कांपि उठयों सुख-राशि अचानक कांपै यथा ज्योति दिया में ।
शब्दों भयो तिससे पुनि व्योम प्रभंजन तेज जलोविक्रिया में ।
आप बन्यो जग-जीव शरीर प्रवेश भयो जनु आपु जिया में ।

पितृमार्ग से गमनागमन तथा गर्भवास

प्राणी मृत्यु के अनन्तर किस प्रकार पितृमार्ग गमन करता है, पुनः कैसे आगमन होता है और गर्भ में कैसे वृद्धि करता है । इसका सजीव वर्णन ''आत्मानन्दामृतम्'' में इस प्रकार है ।

जहाँ लौ संसारा चर-अचर जीवादिक सबै,
सभी आते-जाते जनन-मरणाकार लिखिए ।
वह द्वो पन्थानौ पितुर-सुर नामौ श्रुतिविषे,
कपै आपै जानौ अवनि, शशि, भानू तक वही ।। १ ।।
चिता में ले जाते प्रथम नर ताको मरत जो,
धुवां होता सोऊ दहति तनु आर्गी जन मनै ।
धुवां पानी ही है रवि-किरण सोखै तुरन्त ही,
चला आगे सोई शशि-किरण ठंठा करि गहै ।। २ ।।
यही है पित्रों की रमणं करने की शुभ जगा,
द्रवै चन्द्रा ताहू करमवश आगे पुनि चलै ।
घटा मेघों की सो जल अनत पर्यन्य नभ में,
वही वर्षा होती जगत सूखकारी अवनि पै ।। ३ ।।
जमै सावां को दै उड़द रंड़ ज्वारी अरू मका,
लगाती धानीहू यव-चरण गेहूं शरषपा ।
फलैं फूलैं पाकैं तृण सहित अन्नादिक सबैं,
सुखी होवै खाकैं मनुज-पशु जेते तनु धरै ।। ४ ।।
पचै खट्टा होकै रस रूधिर मांसादिक बनै,
वही मेदा होता नस बनत-हड्डी पुनिक्सा ।
दृवै देही से जो मदन रस नारी भग विषे,
भवेद्गर्भाधानं कलल पुनि फेना बनत सो ।। ५ ।।
कड़ा होने पै ही शिर पग कराधॉख मुखहू,
महीना छै बीते तनु बनि मये लोभ नखके ,
वही चेतै जोई लखत पहले ही सब कथा ।। ६ ।।
अहो स्वामी मेरे अब तुम उबारो गरम ले,
महा दुःखी हौं मैं प्रभु कहि न जाती तनु व्यथा ।
अनेकों जन्मों में अति अधम कीन्हें करम मैं,
करौं तेरी सेवा यदि जनम होवे शिव शिव ।। ७ ।।

यहि विधितलफत गर्भ में, सुमिरै जन्म अनेक ।
अब ईश्वर की भक्ति, होइहौं सहजहिं एक ।।

यदि विधि विलमत गर्भ मंझारी । हे दयालु हे भव-दुःख-हारी ।।
प्रभु अब मो पै कृपा करीजै । मेटहु व्यथा बेर जनि कीजै ।।
नवम मास बीते जनि होइ । भूल गये कहं उहै कहिं रोइ ।।
जो शुभ कर्म करत भुवि माहीँ । ब्राह्मणं क्षत्रिय के घर जाहीं ।।
अथवा वैश्व होत करती ते । जो कुछ धर्म सहित दिन बीते ।।
अशुभ कर्म का यह फल भाई । श्वान श्वपच सूकर तनु पाइ ।।
पाप कर्म ते कीट पतंगा । भालु व्याल अरू क्रूर विहंगा ।।
यही नरक कर बास कहावै । कर्म विवश तनु धरि बिलखावै ।।

पितृर्मा याको कहिए, संशय भ्रम दुःखमूल ।
आप अपनी ही रची, रचना लह्यों दुकूल ।।

इस प्रकार अनेक विषयों का वर्णन इसमें है । संस्कृत में तो बड़ा ही हृदयग्राही तथा विद्वता पूर्ण प्रामाणिक कथन है ।

शास्त्र विरूद्ध नाम का विरोध

भाऊ आदि में अनेक सन्यासी ऐसे भी थे, जो गुरू-परम्परानुसार सन्यासी नहीं थे । किन्तु 'सरस्वती' योगपट्ट रखे थे और ब्राह्मणों से चरण-स्पर्श कराते थे । श्री स्वामी जी को शास्त्र-विरूद्ध आचरण पसन्द न आया । उन्होंने इसका विरोध किया और सब जानता का सूचित करते हुए, एक पर्चा भी निकाला ।

श्री शाङ्कर साम्प्रादायान्तंगत सरस्वती नाम में धूर्तता ही कालिमा

भारतवर्ष के समस्त द्विजो (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्व) को सचेत हो जाना चाहिए । अब तक सरस्वती, तीर्थ तथा आश्रम- ये तीन नाम शंकराचार्य के वैदिक सम्प्रदाय में शुद्ध थे । परन्तु अब सरस्वती नमा में धूर्तता रूपी कालिमा ने आश्रय किया है । "तीर्थाश्रम वनारण्य गिरिपर्वत सागरः । सरस्वती भारती च पूरी नामानि वै दश ।" शाकंर सम्प्रदाय के ये दश नाम है । सरस्वती नामान्र्तगत गुरू-परम्परा से योगपट्ठ का अभिषेक (नामकरण) वेद, पुराणान्तर्गत प्रमाणित संस्कार ईश्वर नामों में पठित नाम ग्रहण कर, आनन्द पद के साथ योजित कर सन्यस्त लेने वाले शिष्य का संस्कार किया जाता है । आज तक वेद-पुराण वाह्य अशास्त्रीय, असंस्कृत, अत्यन्त भद्दे, अनर्थक हीरानन्द, पन्नानन्द, जवाहरानन्द इत्यादि किसी भी सन्यासी का योगपट्ठाभिषेक (नामकरण) 'सरस्वती'

सन्यानियों में नही किया गया । यदि इस विषय मे कोई सज्जन, महात्मा शास्त्रार्थ करना चाहे, तो बन्ध्या-पुत्र सिद्व करने के समान ही उनका परिश्रम होगा । हीरा, पन्ना, जवाहर इत्यादि नाम वैदिक, संस्कृत तथा देवनागरी भाषा के भी नहीं है । अतएव समस्त भारतवर्ष के द्विजो (ब्राह्मण, क्षणिय तथा वैश्व) को सविनय सूचित किया जाता है और अनुरोध किया जाता है कि ऐसे धूतों से बचें अर्थात् शिष्य न होवें । इनके नमस्कार करने तक का शास्त्र मे निषेध किया है । जिनके हिन्दू होने का चिन्ह शिर नहीं और मुसलमान का चिन्ह नूर (दाढ़ी) भी नहीं, वे शाकंर सम्प्रदाय के तो हैं ही नही । बस, गोस्वामी तुलसीदास जी की चौपाई सहचरित होती है -

जे वर्षाधम नीच अचारा । तेलि कुम्हार श्वपच कलवारा ।।
नरि मुई घर सम्पति नासिर । मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी ।।
ते विप्रन के पांय पुजावें । उभय लोक निज हाथ नसावें ।।

भोजन में चमत्कार

जब-तब श्री स्वामी जी चमत्कार भी प्रदर्शित करते थे । एक बार बैतूल-निवास के समय वन-भ्रमण की योजना बनी । श्री स्वामी के साथ ६ व्यक्ति और भी थे । श्री स्वामी जी के लिए घर के ही कुछ पूड़ी बनवाकर ले ली गई थी। दिनभर वन भ्रमण हुआ । सानन्द विनोद-वार्ता करते हुए सन्ध्या समय एक स्थान में सभी बैठ गए । एक भक्त ने भोजन का प्रस्ताव किया । श्री स्वामी जी ने स्वीकार किया और कहा- ''केला आदि के पत्ते तोड़कर सबको भोजन दो'' । सभी व्यक्ति भोजन के लिए बैठ गए । पत्ते सम्मुख रख दिए गए । श्री स्वामी जी ने कहा - ''एक-एक पूड़ी और शाक सब को दो'' । सभी के आगें शाक-पूड़ी आई, सब व्यक्तियों ने खाली । पुनः कहा - ''एक-एक पूड़ी और दो'' , दी गई । इसी प्रकार सात बार एक-एक बार पूड़ी दी गई । इसी प्रकार सात बार एक-एक बार पूड़ी दी गई । श्री स्वामी जी ने तो केवल दो पूड़िया लीं । विनोद-वार्ता और भोजन-क्रम साथ ही चल रहा था । फिर सानन्द स्थान में लौट आए । शेष पूड़ियां प्रसाद स्वरूप घर मे दे दीं गई । तब माता जी ने कहा - ''क्या श्री स्वामी जी ने भोजन नही किया?'' इसके उत्तर में उनके सुपुत्र ने कहा- ''माँ, तुमने कितनी पूड़ियां दी थी ? सभी ने सात-सात पूड़िया खाई । श्री स्वामी जी ने दो खाई, शेष है यह प्रसाद ।'' माता जी ने उत्तर दिया- हमने श्री स्वामी जी के लिए सात पूड़ियां दी थी । जिसमे पांच तो यहा है । फिर तुम लोगों ने सात-सात पूड़ी कैसे खाई?'' यह सुनकर सभी को अतीव आश्चर्य हुआ । ''श्री स्वामी जी की महिमा ही यह है'' - ऐसा जानकर, प्रसन्नतापूर्वक सब अपने-अपने घर गए । कभी-कभी ऐसे चमत्कार प्रकट हो जाते थे ।

शिवराजपुर में गंगा-पार

गंगा-तट पर निवास की इच्छा हुई । भाऊपर जनपद कानपुर एकान्त तथा प्राकृतिक सौन्दर्य पुर्ण है । समीप ही ग्राम में ब्राह्मणों का निवास है । उन लोगों ने गंगा-तट पर तृण-कुटी बनवा दी । सम्वत् १६७५-७६ का समय था । निकट ही कुछ सन्यासी निवास करते है । शिवराजपुर में भी सन्यासी रहते थे । सत्संग तथा उपदेश यहाँ भी चल रहा था ।

एक बार जहानाबाद से कुछ सज्जन दर्शनार्थ यहाँ आये । गंगा के पार चण्डिका देवी का मन्दिर है । श्री स्वामी जी तथा भक्त-मण्डली उधर जाने के लिए तत्पर थे। शिवराजपुर से नौका जाती थी । निषाद से कहा गया - हम लोगों को पार उतार दो ।

"नौका में बकरियां चढ़ चुकी है । इन्हें उतार कर, तब आप लोगों को ले चलूगां । निषाद ने उत्तर दिया ।

"कितना समय लगेगा?" एक सज्जन ने प्रश्न किया ।

"गंगा जी का प्रवाह तेज है, पानी भी गहरा है । इसलिए एक घण्टा जाने में और एक घण्टा आने में लगेगा । निषाद ने कहा ।

दो घण्टा प्रतीक्षा करना कठिन था । फिर दो घण्टा जाने-आने के लिए भी चाहिए । सब सज्जन निराश हो गए । श्री स्वामी जी ने यह देखकर कहा- जल अधिक गहरा नही मालूम होता, आओं चलें । देखो इससे अधिक पानी नही है, निश्चित होकर चले आओ ।" जानु-पर्यन्त गंगा जी में खड़े होकर श्री स्वामी जी ने कहा । सभी सज्जन श्री स्वामी जी के पीछे चल पड़े । कहीं भी जानु से अधिक गहरा पानी नही मिला । गंगा पार होकर, चण्डिका देवी पहुँचे । यहाँ खोये की गुझियां प्रसिद्ध है । एक दुकारन से सब खरीदी गई । देवी का भोग लगा, फिर सभी ने पेट भर खाया । पुनः उसी प्रकार गंगा के इस पार आ गए । शिवराजपुर के ब्राह्मण तथा पण्डों ने जब सुना कि नौका वाला नौका-पास नही ले गया । तब वह सब निषाद पर बड़े अप्रसन्न हुए और मारने के लिए तत्पर थे । किन्तु श्री स्वामी जी ने रोका और कहा- "उसका कोई अपराध नहीं है" । वास्तव में गंगा जी में जल अथाह था । किन्तु श्री स्वामी जी की यौगिक शक्तिका ही चमत्कार था, कि वह उस समय उनके जानु पर्यन्त हो गई । श्री स्वामी जी की यह लीला थी । और भक्तों के लिए ध्यान का साधन ।

सन्यास का अधिकारी ब्राह्मण

इस प्रकार स्वामी जी ने स्वकल्पित नाम के साथ आनन्द तथा शाकंर सम्प्रदाय के सरस्वती नामयुक्त करने का विरोध किया है । क्योंकि दश नाम शाकंर सम्प्रदाय की

विभूति है । गुरू परम्परा से जो सन्यास में दीक्षित होता है । उसी का नाम इन पर होता है । गुरू ब्राह्मण को ही सन्यास दीक्षा देते है, ब्राह्मणेतर की नही । क्योंकि शास्त्र का आदेश है – गुरू ब्राह्मणः प्रव्रजेत् गृहात् (मनु० ६.३८)। ब्राह्मण गृह-त्याग कर, सन्यास ग्रहण करे ।" श्रुति भी है – ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च, वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायथ भिक्षाचयैचन्ति (बृह०उ०३.५.१) ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च, वित्तैषणा लोकैषणा का त्याग कर भिक्षाचरण से विचरण करते है । इस प्रकार श्रुति में स्पष्ट रूप से ब्राह्मण के लिए ही सन्यास तथा भिक्षा का कथन है । अन्य वर्ण के लिए सन्यास गृहण का विधान नहीं है । शास्त्र -विरूद्ध आचरण करने से न सुख मिलता है, न शान्ति । निम्न वर्ण के होने पर भी, उच्च ब्राह्मण वर्ण से पूजा कराना तथा शिष्य बनाना तो सर्वथा गर्हित कर्म है । इससे दोनो का पतन होता है। इसी कारण श्री स्वामी जी ने विरोध किया ।

गोकुल चन्द्र-मिलन और गिन्नी-चमत्कार

एक बार दक्षिण की ओर गए थे श्री स्वामी जी । इटारसी रेलवे स्टेशन से वापस इसी ओर आने का विचार था । फ्रन्टियर मेल में प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की सीट बम्बई से ही आरक्षित (रिजर्व) हो जाती है । इसलिए मध्य के स्टेशन से आरक्षण असम्भव होता है । इसलिए मध्य के स्टेशन से आरक्षण असम्भव होता है । श्री स्वामी जी तथा उनके शताधिक भक्त स्टेशन आए । गाड़ी आई, किन्तु सभी सीटें आरक्षित थी । कुछ सज्जन सीट के लिये प्रयत्न कर रहे थे । श्री स्वामी जी अनेक भक्तों के मध्य खड़े वार्तालाप कर रहे थे । वहीं एक नवयुवक को जानने की उत्सुकता हुइ कि यह कौन है? अवस्था थी लगभग २५ वर्ष । गौरवर्ण, लम्बा शरीर, शलवार, कमीज तथा कुल्लेदार पेशावरी पगड़ी सिर पर थी । उसने आकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और श्री चरणों में कुछ केले समर्पित किए । श्री स्वामी जी की दृष्टि नवयुवक की ओर गई । वेष पठान मुसलमान का था, किन्तु मुख पर श्रद्धा के भाव थे । प्रश्न किया- भाई । तुम कौन आस्पद् हो ?

“प्रभो ! मैं ब्राह्मण हूँ” नवयुवक का उत्तर था । आस्पद् जैसे शब्द उसने कभी नही सुन थे । उसे न संस्कृत का ज्ञान था, न हिन्दी का । जाति वाचक प्रश्न का अनुमान कर उत्तर था उसका ।
“ब्राह्मण हो? - आश्चर्य श्री स्वामी जी ने कहा । पुनः कहा - “कौन ब्राह्मण हो ।”
“प्रभो ! सारस्वत ब्राह्मण हूँ” नवयुवक ने उत्तर दिया ।
“गोत्र क्या है?”
“वशिष्ठ गोत्र है।”
“शिखा-सूत्र है? सन्ध्या-गायत्री आदि कर्म करते हो?” श्री स्वामी जी ने परीक्षा के लिए प्रश्न किए ।
“साधारण कर्म करता हूँ । शिखा-सूत्र है ।” शिखा तथा यज्ञोपवीत दिखाते हुए उत्तर दिया उसने ।
उसी समय लोगों ने आकर कहा- “स्वामी जी ! कोई सीट खाली नही है ।”
“दिल्ली जाने का विचार है, किन्तु कोई सीट खाली नही है ।”
“मेरी सीट द्वितीय श्रेणाी में है । आप उसमे बैठिए।”
“किन्तु तुम कहाँ बैठोगें?”
“प्रभो, आपके चरणों में” श्रद्धा तथा विन्रमतायुक्त वचन थे उसके । श्री स्वामी जी ने एक भक्त को सीट देखने के लिए भेजा । उसने आकर कहा- सीट ठीक है । श्री स्वामी जी सीट पर जाकर बैठ गए । नवयुवक श्री चरणों में बैठ गया । उसकी श्रद्धा तथा विन्रमता की छाप पड़ी श्री स्वामी जी पर ।
“तुम्हारा क्या नाम है?” प्रश्न था श्री स्वामी का ।
“प्रभु जी,” “कुछ लोग गोकुलचन्द्र कहते है कुछ लोग चन्द्रदेव”
“विवाह हो गया है?”
“नही”
“इतनी आयु होने पर भी विवाह क्यों नही हुआ?” जिज्ञासा की श्री स्वामी जी ने ।
“२८ वर्ष की आयु में मृत्यु योग है -ऐसा ज्योतिषियों ने कहा है । इसी कारण विवाह नही हुआ । नवयुवक चन्द्रदेव ने कहा ।
“ज्योतिषियों ने मृत्यु योग कहा है? क्या कागज -पंसिल है?”
“यह लीजिए” कागज पेंसिल देते हुए चन्द्रदेव ने कहा । श्री स्वामी जी ने कागज पर गणित किया और तुरन्त जन्मांग बना दिया ।
“तुमने अपनी माता का दुग्ध केवल २० दिन पान किया । पश्चात मामी का दूध-पान किया है, श्री स्वामी जी ने कहा ।”
“हाँ, प्रभु जी । ऐसा ही मैने सुना है और सही है” साश्चर्य कहा उसने ।

“जो कुछ ज्योतिषियों ने कहा, वह सही है । किन्तु तुम गृहस्थ नही, विरक्त होगे ।” श्री स्वामी जी ने भविष्य-कथन किया । “एक बात और बतलाए?” पुनः प्रश्न किया श्री स्वामी जी ने ।
“अवश्व बतलाइये” श्री चन्द्रदेव ने उत्तर दिया ।
“बम्बई में तुमने वस्त्र खरीदे है?”
“जी, खरीदे हैं ”
“तुम्हारे पास रूमाल में बंधी १०० गिन्नियां थी वह वही रह गई है ।”
“प्रभो, गिन्नियाँ हमारे पास थी और अभी भी हैं । वहाँ नही रही ।”
“तुम्हें ध्यान नही है । देखो तुम्हारे पास कहाँ ।” श्री स्वामी जी कहा ।
श्री चन्द्रदेव उठे । सन्दूक खोला, नीचे ऊपर सब देखा । किन्तु रूमाल था, न गिन्नियाँ । मुख-कान्ति फीकी पड़ गई । पुनः एक-एक वस्तु निकाल कर देखी, किन्तु गिन्नियों का पता नही । श्री चन्द्रदेव का मुख पीला पड़ गया । नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । मूर्च्छा-सी आ रही थी, गिरना ही चाहते थे, कि श्री स्वामी जी ने सिर पर हाथ रखा और कहा - “चिन्ता न करो, मिल जायेगी।”

श्री चन्द्रदेव को चेतना आई । मन में विचार उठने लगे- “अब मामा जी से क्या कहेगें? मार पड़ेगी तथा लाच्छन भी लगेगा । मेरे पास कुछ है भी नही, कि इसे पूरा कर सकूं ।” यही विचार मन्थन चल रहा था । श्री चन्द्रदेव के मौसी की सुपुत्री कुमारी चन्द्रकान्ता का विवाह होने वाला था । यही सब विचार-तरंगे मन में उठ रही थी, जिसकी झलक मुख-मण्डल पर स्पष्ट भासित हो रही थी। श्री स्वामी जी सभी भाव-संगिमा देख रहे थे । अत्यन्त दुःखी जानकर कहा- देखों, यही रूमाल तथा गिन्नियाँ थी ? रूमाल चन्द्रदेव के हाथ में देते हुए कहा और प्रसन्नता से हंसने लगें ।
“हाँ प्रभु जी, यही रूमाल था” हाथ में लेते हुए कहा । मनोकृत शरीर में जीवन आ गया । प्रसन्नता पूर्वक सन्दूक में बन्द कर, रख दिया ।
दिल्ली स्टेशन आ गया था । श्री स्वामी जी उतर पड़े और कहा- “बम्बई में अपने मौसा जी को लिखों कि जिस दुकान से वस्त्र खरीदे हैं, उसके यहाँ रूमाल में बंधी गिन्नियाँ रखीं है इसलिए दे दो । ऐसा कहने पर वह गिन्नियाँ दे देगा ।
“किन्तु प्रभु जी! गिन्नियाँ तो हमारे पास है ” श्री चन्द्रदेव ने कहा ।
“यह गिन्नियाँ तो तुम्हारे खर्च के लिए है प्रसादस्वरूप”
“यहाँ से आप कहाँ प्रस्थान करेगें?”
“कानपुर” यह कहकर श्री स्वामी जी वहाँ स`चल दिए । अद्भूत घटना थी । श्री चन्द्रदेव ने सीट मात्र बैठने को दी । उसके बदले उन्हें १०० गिन्नियाँ और प्रसन्नता मिली गिन्नियाँ और प्रसन्नता मिली । श्री स्वामी जी के साक्षात्कार से चन्द्रदेव का जीवन ही बदल गया । पूर्व के शिखा-सूत्रधारी श्री चन्द्रदेव ही आज के सन्यासी श्री स्वामी

केशर भारती है । बम्बई में वह गिन्नियां भी मिल गई । यह घटना सन् १६१६ अर्थात सम्वत् १६७३ की है ।

‘आर्य समाज’ पर शास्त्रार्थ

सन् १६१६-१६२० अर्थात सम्वत् १६७६-७७ श्री स्वामी जी के जीवन में अत्यन्त व्यक्त रहा । आर्यसमाजियों से अनेक शास्त्रार्थ हुए । कांग्रेस के असहयोग का भी यही समय था । उसमें भी स्वामी जी ने सहयोग किया । भक्तों पर अनुग्रह और शास्त्र-चर्चा तो प्रमुख विषय थे ही । जहानाबाद, कानपुर आदि स्थानों में आर्य समाजियों से शास्त्रार्थ हुए । कभी-कभी तो निरूतर होकर आर्य समाजी से शास्त्रार्थ हुए । कभी-कभी तो निरूत्तर होकर आर्य समाजी रात्रि को ही पलायन कर जाते थे । किन्तु सत्य को स्वीकार करने का साहस न होता था । कभी मूर्ति-पूजा-खण्डन, कभी जन्मन वर्ण-व्यवस्था खण्डन आदि करते थे । परन्तु सदैव आर्यसमाजी परास्त हुए । श्री स्वामी जी के नाम से वह घबड़ाते थे, कभी सम्मुख आने का साहस न करते थे । तब श्री स्वामी जी ने स्वंय पहल की और शास्त्रार्थ के लिए नवीन विषय चुना । उन्होंने आर्यसमाज को ही वेद शास्त्र के विरूद्ध कहा । इस विषय में एक पर्चा छपवाया और आर्यसमाज को प्रेषित किया । इस पर लेखवद्ध शास्त्रार्थ हुआ । पर्चा इस प्रकार था-

अथैतच्चिन्तनीयम्

‘‘आर्यसमाज’’ यह शीर्ष वाक्य सब प्रकार से अशुद्ध तथा अवैदिक है । किन्तु आर्य पद वैदिक जाति वाचक सर्वनाम रूप रूढ़िगत है, गुण वाचक नही है । समाज शब्द प्राकृत भाषान्तर्गत है अथवा लौकिक संस्कृत है । इन दोनों पदों का संगठन किसी भी प्रकार से नही हो सकता । पाणिनि जी ने अष्टाध्यायी में सूत्र किए हैः- ‘‘आर्यों ब्राह्मण कुमारयोंः’’ (अ०६पा०२ सू० ५८) ‘राजा च’ (६.२.५६) अतएव आर्य पद ब्राह्मण, कुमार तथा राजा के संबोधनादि में प्रयोग कर्तव्य है, अन्यथा नही । जिस समाज में सब जाति वाले पुरूष हों, वह ‘आर्यसमाज’ नही हो सकता । अथवा ‘‘आर्यः स्वामिवैश्वययोंः (पा० ३.३.१०३) इस सूत्र से आर्य शब्द अपन्यर्थ करें, तब भी स्वामी का वंशज समझा जायेगा, समाज नही । इसका प्रमाण सहित उत्तर वेद, वेदागं और उपनिषदों से लिखना चाहिए या इस अत्यन्त मिथ्या वाक्य को प्रयोग से निकाल देना चाहिए ।

निवेदक- स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

इस पर्चे से आर्य समाजियों में खलबली मच गई । कुछ दिनों के पश्चात श्री भूदेव विद्यालंकार कानपुर की ओर से उत्तर निकला ।

ओउम्
मुधैव स्वामिन् खलु चिन्तितोसि

वेद के मंत्रों का कुछ भी ज्ञान रखने वालो से यह बात छिपी नहीं है कि वेद में मानव जाति के दो ही भेद किए गये है १. आर्य, २. दस्यु । ''विजानीध्या आर्य्यान्येच दस्यवों वर्हिष्मते रन्धया शाशद ब्रतान'' (ऋ० १.५१.८)'' हत्वा दस्यून् प्रार्य्य वर्ण मावत् (ऋ० ३. ३४.६) इत्यादि, एक-दो नही, सैकड़ों मन्त्रों में आर्य और दस्यु का वर्णन आया है । दस्यु को मारकर आर्य का रक्षा करना अनेक मन्त्रों में प्रतिपादित है । उपरोक्त दूसरे मन्त्र में ही कहा गया है कि दस्यु को मारकर (प्रार्यवर्ण मावत्) श्रेष्ठ आर्य की रक्षा करो । इतना होने पर भी यह देखना आवश्यक है कि आर्य और दस्यु किसी जाति विशेष का नाम था या किसी विशेष गुण-कर्म वालों को आर्य और दस्यु कहा जाता था । प्रथम तो उपरोक्त मन्त्र में ही दो शब्द 'बर्हिष्मते' और 'अब्रतान्' पड़े हुए है । जिसका अर्थ है - यज्ञ करने वाले और व्रतरहित अर्थात् यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वालो को आर्य और सदाचारहीन व्रतरहित को दस्तु कहा है । इतना ही नही (ऋ ०८.७०.११) मन्त्र में देखिए क्या लिखा है- अन्यव्रत ममानुषमयऽवान मदेवयुम् दस्यु'' अर्थात व्रतहीन, मनुष्यताहीन व्यवहार करने वाले, यज्ञादि कर्मरहित और देव या विद्वान के द्वेषी दस्यु का समूल नाश करें । जब आर्य और दस्यु दो ही जाति है । तब स्पष्ट है कि यदि दस्यु उपरोक्त गुणवाले को कहते है । तो सदाचार व्रतयुक्त, मनुष्योचित व्यवहार करने वाले, अगिन्होत्र आदि यज्ञ करने वाले और देवताओं तथा विद्वानों के प्रिय पुरूष को आर्य कहेगें । अतः उपरोक्त गुणविशिष्ट पुरूष आर्य कहलाने का अधिकारी है और होगा ।

१. यह कथन या विचार मेरी ही नही है, प्रत्युत सनातन धर्मियों के रत्न पं० अखिलानन्द जी ने ही भी अपनी ''वैदिक वर्णव्यवस्था'' नामक पुस्तक के पृष्ठ ५ पर लिखा है- ''आर्य और दस्यु यह दोनों शब्द आर्यत्व एवं दस्युत्व के गुण होने के कारण जाति वाचक नही है, किन्तु गुण वाचक ही ठहरते है'' । पहले घर में समझौता कर लीजिए।
२. 'ऋ' धातु से जिसका अर्थ गति है 'ण्यत्' करने पर आर्य शब्द सिद्ध होता है । गति का अर्थ है ज्ञान, गमन तथा प्राप्ति अर्थात् ज्ञानी, इधर-उधर गमन करने वाले और किसी वस्तु को प्राप्त करने वाले को आर्य करते है । इसीलिए ज्ञान प्रधान विद्वान भूदेव, आज्ञानुसार गमन करने वाले भृत्यादि और अन्य विदेशी राज्यों को विजय-द्वारा प्राप्त करने वाले क्षत्रिय तथा च दूसरे के पदार्थो को व्यापार से प्राप्त करने वाले वैश्व अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चारो वर्ण आर्य कहलाते है और कहलावेगें भी ।

३. ‘‘आर्यों ब्राह्मण कुमारयोः’’, ‘‘राजा च’’ इन दो सूत्रों से आर्य पद ब्राह्मण, कुमार तथा राजा के सम्बोधिनादि में प्रयोग कर्तव्य है, यह लिखना व्याकरण से अनभिज्ञता सिद्ध करता है । इस सूत्र मे सम्बोधन का कही ढूढ़े भी पता नही चलता । इतना ही नही, परन्तु स्वामी जी लो और भी अनर्थ किए डालते है आप (ब्राह्मण कुमारयोंः) का अर्थ है ब्राह्मण कुमार, क्या कहना है वाह-वाह । वस्तुतः इस सूत्र का अर्थ है कि ब्राह्मण और कुमार के साथ आर्य शब्द का योग होने पर स्वर जैसे का तैसा ही रहे अर्थात (आर्य ब्राह्मण) और (आर्य कुमार) में स्वर कर्तव्य होने पर कोई अन्य स्वर न हो । परन्तु आप तो व्याकरण को अपनी ओर ही खीच ले जाना चाहते हैं । विचारें व्याकरण से खीचा -खाची करना कहाँ तक ठीक है, विद्वा नही इसको विचार लें ।

४. ‘समाज’ शब्द समूह का वाचक है और ‘आर्य’ शब्द श्रेष्ठ गुण वाले पुरूषों का वाचक है । बस, फिर श्रेष्ठ गुण वाले पुरूषों का जहाँ भी समुदाय होगा, वही आर्य समाज है । इसमें क्या अशुद्धि है । क्यों स्वामी जी आर्य समाज शब्द को सुनना नहीं चाहते, इतना क्यों? इस शब्द से स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी घबड़ाते है । यह कुछ समझ में नही आता है । यदि आर्यसमाज के नाम से ही श्री स्वामी आत्मानन्द जी यदि इतना ही हिन्दू शब्द से डरें और सनातन धर्मावलम्बियों को समझावें कि वह हिन्दू शब्द को उत्तम सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयास न करें, तो बहुत लाभ होगा । - **भुदेव विद्यालंकार**

इसके उत्तर में ही स्वामी जी महाराज ने लिखा-

सत्यमेव जयते नानृतम्

हशंकराचार्य मतच्युताथ सरस्वती नाम वृथा घृतोऽसि ।
अहो दयानन्द कुठारबुद्धे मुधैव सवामिन् खलु चिन्तितोऽसि ।।१।।
किं गण्यं तव वैगुण्यं द्वैगुण्यं जाति भेद कृत ।
ब्राह्मणोंऽस्य मुखं मन्त्रं पश्यन्ते धी मुधा कथम् ।।२।।
भूदेव जो भूधरसारचित कुण्डीकृता मूशलतोऽधिकाधी ।
म्बोधनादाविहं ‘आर्य’ शब्दों नस्यात्कथं तधितकृद्विधानात् ।।३।।

पत्र देखा । शीर्ष लेख ‘ओ, तीन, महलन्त’ लिखा है । इसका क्या अर्थ माना जायें? यदि प्रणव मन्त्र कहा जाये, तो ऊँ इत्येकाक्षर ब्रह्म वह एक अक्षर ब्रह्म है । ‘ओरम्’ ये तीन अक्षर है । यदि ओंकार को लुप्त करने मे ओंकार को लुप्त करने में ओकारोत्तरवर्ती तीन का अंक है, तो मकार प्रथक हो गया, अतएव दो अक्षर हुए । यदि एक अक्षर का मंत्र है, परन्तु अ, उ, म अर्द्धमात्रा ये चार पाद (मात्रा) है, तो चार मात्रा का एक अक्षर (ऊँ) मन्त्र लिखते । परन्तु (श्राद में कांछ पकड़ाने के समान) स्वामी दयानन्द जी तो ओ, तीन, महलन्त बता गए, फिर लिखें कैसें ? अस्तु जो हो इन

ऊटपटॉग लेखों में कौन समय वृथा खोये । वाह रे वेद का ज्ञान रखने वाले लाल बुझक्कड़ । मानव जाति के दो ही भेद ? “ ब्राह्मणोऽस्यमुखमासी द्वाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभयां शुद्रो अजायत ।” (शु० यजु० ३१.११) इस मन्त्र को देखते हुए वृथा ही लिख मारा । पूर्ण मन्त्र तथा मन्त्रार्थ पर विचार किया होता । “विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासद् ब्रतान् । शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ताते सधमादेषुचाकन ।।” (ऋ० १.५१.८) अस्यार्थः - “हे इन्द्र । त्वं आर्यान्विदुषोनुष्ठात्रीन्विजानीहि” हे इन्द्र तुम आर्यों अर्थात अनुष्ठान करने वाले विद्वानों को विशेष कर जानते हो । “ये चदस्यवः तेषामनुष्ठात्दृणामुपक्षयितारः शत्रवः तावपि विजानिहीति शेषः” तथा ये उन्हीं अनुष्ठानियों (अनुष्ठान कर्ताओ) के शत्रु दस्यु है, तिनको भी विशेषकर जानते हो । “ज्ञात्वा च वर्हिष्मते बर्हिषा यज्ञेनयुक्ताय यजमानायाब्रतान् ‘व्रतमिति कर्मनाम’ तथा हियास्कः “कर्म कस्मात् क्रियत इति सतः (नि० ३.२), कर्म विरोधिनस्तान् दस्यून रन्धय हिंसा प्रापयःकर्म कस्मात् क्रियत इति सतः (नि० ३.२), कर्म विरोधिनस्तान् दस्यून् रन्धय हिंसा प्रापयः यह जानकर यज्ञ से मुक्त यजमान के निमित्त कर्म विरोधी दस्युवां का नाश करो । ‘व्रत’ शब्द कर्म नामों में पठित है, निरूक्त देखना चाहिए (नि० अ० ३ खं० १) । किं कुर्वन शासत् शासत् दृष्टानामनुशासनं निग्रहं कुर्वन्” क्या करते हुए । दुष्टों को अनुषासन करते हुए । “अतः शाकीशक्तियुक्तस्त्वं यजमानस्य चोदिता प्रेरको भव” अतएव तुम शाकी अर्थात शक्तियुक्त हो, यजमान के प्रेरक होओ । ‘यज्ञविधातकानसुरान् तिरस्कृत्य यज्ञान् यजमानैः सम्यगनुष्ठापयेति भावः’ भाव वह है कि यज्ञ-विध्वंस करने वाले असुरों का तिरस्कार कर, यजमानों से यक्त यज्ञों का स्थापना कीजिए। यदि यज्ञों का विनाशक दस्यु है, तो जातिवाचक दस्यु शब्द नहीं हो सकता है । आर्य शब्द जाति वाचक वैदिक है, ‘अंय’ शब्द भी रूढ़िगत है । “स्वामिन्यन्तोदातः वैश्य आद्युदान्तः” ब्राह्मण कुमार राजादीनां प्रयोगं आर्य शब्द समान स्वरकः, ‘अर्य’ शब्द ब्राह्मणादिकों के अर्थ में समान स्वर है । भूदेव जी को चाहिए कि देवनागरी भाषा का पढ़ना सीख लेवें । (ब्राह्मण, कुमार तथा राजा) यदि समास करेगें, तो ब्राह्मण और कुमार शब्द को बोध हो जाता है अथवा तथा पद से ही ब्राह्मण और कुमार शब्द को बोध हो जाता है । अथवा तथा पद से ही ब्राह्मण और कुमार तथा राजा का बोध होता है । यह पढ़ना छोटे-छोटे बालक जानते है । अहो बालिश व्याकरण पढ़ो, फिर व्याकरण की बात करना । “आर्य” शब्द तथा ‘अर्य’ शब्द यद्वा ‘ऋ’ गतौ धातु से गत्यर्थ-बोधक आर्यशब्द ‘ण्यत’ प्रत्यय किस स्थल का है ? भला सोचो तो सही । कविरत्न पं० अखिलानन्द कृत ‘वर्णव्यवस्था’ नामक पुस्तक को आप शहद लगा कर चाहिए । यहाँ पर प्रमाण सहित लिखिए कि ‘आर्य’ शब्द का उत्तरवर्ती समाज शब्द किस वेद वेदागों में है या इस भद्दे वाक्य को त्यागिये । कृपा कर स्मृतियों देखिए ७२ भेद जाति के है । इतने मे न घबड़ायें पत्र में प्रथम जातिवाचक आर्य शब्द लिखा है, मध्य

में गुणवाचक-यह कैसा असंगत लेख ? यह लेख बालको के लेख से भी अधिक भद्दा है । (जिसका अर्थ है चाहिए और देखिए नेत्र खोलकर ऋग्वेद के आठवें मण्डल मके ७० वें सूक्त में नव ही ऋचायें हैं। इस प्रकार के मिथ्या प्रमाण (ऋ० ८.७०.११) लिखकर धोखा न देना चाहिए ।

२. ''समाज शब्द समूह वाचक है और आर्य शब्द श्रेष्ठ गुण वाले पुरूषों का वाचक है ।'' यह लिखकर, बस आप ऊपर के जाति वाचक आर्य शब्द के लेख को भूल गए, नीचे गूण वाचक मान लिया । अपने मन से 'आर्य समाज' वाक्य सिद्ध कर लिया । धन्य है आपको तथा आपके अनुयायियों को, जो लज्जित नही होते । ऊट-पटांग लिखने में सदैव जेखनी- मुखमर्दन किया ही करते है ।

३. मैं आर्य समाज शब्द से घबड़ाती नही, किन्तु सत्योपदेश करता हूँ । जिस समाज में द्विजों के अतिरिक्त शुद्र-यवनादिक सम्मिलित हो, वह 'आर्य समाज' किस प्रकार कहा जा सकता है ? आर्य समाजी द्विवादिक भी कर्महीन तथा मिथ्याचार परायण होने से 'दस्यु' शब्दाधिकारी हैं ।

४. आर्य ब्राह्मण यह लेख कहा तक असंगत है, विचार कर्तव्य है । वेद में अर्य शब्द जाति वाचक संज्ञा के बदले कई स्थानों में आया है । (शु० य० २६. २.३) सैकड़ो मन्त्र है, नेत्र खोलकर देखना चाहिए । कि बहुना सुज्ञेषु ।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

इसका उत्तर श्री भूदेव जी ने इस प्रकार दिया-

ओउम्

आपका पूरा पत्र ''सत्यमेव जयते नानृतम'' शीर्षक वाला मिला । उसमें 'ओउम्' शब्द पर जो बेमूल्य विचार आपने लिखे है, मुझे प्रसन्नता है कि उन पर अब किसी प्रकार की टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नही रही । आपे 'अस्तु जो हो इन ऊट-पटांग के लेखों में कौन समय वृथा खोये ।, यह लिखकर आप ही फैसला दे दिया है । सच है जादू जो सर पर चढ़ कर बोले ।

अफसोस स्वामी जी महाराज ! अफसोस, यह क्या हुआ? वेद और वेदागों की दुहाई देते-देते यह सहसा स्मृतियों में कहाँ कुद पड़े । सचमुच असत्य के त्यागने और सत्य को ग्रहण करने मे ऐसी ही तत्परता दिखानी चाहिए । वेदों मे यदि कमी न हो, तो क्यों न स्मृतियों से उसे पूरा करें । वेद मे मानव जाति के भेदों की कमी का अनुभव करके

ही शायद ७२ भेद स्मृतियों से आपको दिखाने पड़े हैं । वेद या वेदांग से दिखाते, तो कुछ अच्छा भी प्रतीत होता ।

जहां तक मैनें ग्रन्थों का अवलोकन किया है 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् इस मंत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व तथा शूद्र इन चार वर्णों का वर्णन है, न कि चार जातियों का । और यदि आप इन्हें भेद मान भी लें, तब भी यह मानना पड़ेगा कि यह जातियॉ व्याप्य है, क्यों ? वेद में आर्य-दस्यु दो ही प्रकार के मनुष्यों का वर्णन मिलता है । यथा 'विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवः' हत्वा दस्युन प्रार्य्यवर्जमावत्' यवंवृर्जमावत्-अभिदस्यु वकुरेणाघमन्त उरू ज्योतिश्चक्र धुरार्य्याय (ऋ० १.११७.२१) इत्यादि ।

साथ ही इन मन्त्रों में आर्यो के जान और माल की रक्षा तथा दस्युओ के एक दम नाश करने की भी आज्ञा है । अब यदि ब्राहम्णादि शुद्रान्त चारों वेदानुकूल अपना जीवन व्यतीत करते है, तब कोई कारण नही दीखता कि उसके नाश की आज्ञा वेद दे । साथ जिनके नाश करने की आज्ञा है । उनका लक्षण ऋ० ८.७०.११ 'अन्य ब्रतम मानुषम्-मंत्र में कैसा साफ कर दिया है । वेद विहित काम न करने वाले, मनुष्यतारहित व्यवहार करने वाले, यज्ञादि श्रेष्ठ काम न करने वाले तथा देव या विद्वानों के द्वेषी इत्यादि । मन्त्र के अगले भाग मे ऐसे ही आदमी को दस्यु कहा गया है ।

इससे स्पष्ट है कि वेदाज्ञानुकूल चलने वाले सब आर्य है । इसीलिए शूद्रान्त चारों वर्ण वाले आर्य हो सकते है । मेरा यह कथन मनु महाराज के मुख बाहुरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः । म्लेच्छ वाच्श्च र्य वाचः सर्वेते दस्यवः स्मृताः ।। इस वाक्य से और भी पुष्ट होता है कि चारों वर्ण वालों से पृथक जितनी भी जातियां है, सब दस्यु है । अर्थात वह सब जातियां दस्यु के अन्दर है । और ब्राहम्ण शुद्रान्त सब आर्य है । इतना ही नही वेद में जो है सो है ही, अब जरा वेदांग भी देखिए तिरूक्त में आर्य शब्द के अर्थ 'आर्य ईश्वर पुत्रः' परमात्मा के पुत्र लिखा है । क्या तेली, तमोली, चमार, कलार तथा यवन और ईसाई आदि परमात्मा के पुत्र नही है ? निस्सन्देह इस प्रकार से दस्यु श्री आर्य है । बस केवल परमात्मा की आत्मा न पालन से ही वह दस्यु कहलाते है, यदि वही आज्ञा पालन करने लगें, तो फिर आर्य हो सकते है । क्योंकि निरूक्त ७.२३ में ही लिखा है -दस्युः दस्यते क्षयार्था द्रुपदज्ञयन्तयस्मिवसा" उपदासयति कर्माणि, जो कर्मों को नष्ट करने वाला है, वह दस्यु है । यदि वह कैसा न करे, तब वह दस्यु भी नही रहेंगे ।

स्वामी जी धोखा देना आर्यो का कान नही है । मैने जो ऋ ८.७०.११ का प्रमाण दिया था, वह बिल्कुल ठीक है । जरा अपनी भी दोनों आंखें खोलकर देखिए, ऋ० से अजमेर सं० १९५७ वि० में जो छपी है,उसके ४५८ पृष्ठ पर ।

स्वामी जी मेरे अहो भाग्य है, जो आपके व्याकरण पढ़ने की नौबत नही आई । मेरे लेख में जितना को (जिसका) शुद्ध करते हुए, रउरे बहुतै झीके है और लिखा है- यह लेख बालकों के लेख से भी भद्दा है, सच है अपनी फूटी न देखे, दूसरे का तिल

देखने सिर के बल दौर जाए । क्या खूब 'आर्यसमाज' शब्द पर विचार करने बैठे और छापे की अशुद्धि पर अपनी पंडिताई कर डालते है स्वामी जी । यद्यपि आपकी तरह यह काम मुझे पसन्द तो नही तो भी आपके नेत्र खोलने के लिए कुछ बानगी पेश करता हूँ ।

१. श्री गणेश जी में ही छींक भई, 'हे शंकराचार्य' के स्थान पर 'हशंकराचार्य' लिखा है । ए की मात्रा कहां बिलाय गई है ।
२. हमें तो देवनागरी पढ़ने का उपदेश और आप लिखें 'अनुष्ठानियों' २० पं० पता लगता है बिचारी संस्कृत की छीछालेदर आप ही के हाथों बदी है, देखें ।
३. पहले पृष्ठ की अन्तिम सतर में 'अर्य' के स्थान पर 'अर्थ' छप गया है ।
४. दूसरे पृष्ठ की दसवीं सतर में 'समाज' शब्द किस वेद-वेदांगों में है, इसके लिए स्वामी जी ने शायद कोई नया भाषा के व्याकरण रच रखा होगा । जो इस वाक्य को शुद्ध कर दिखावै ।
   कहिए स्वामी जी । कभी अपने गरेबान में भी मुख डालकर देखा है कि दूसरों के दोष देखने में इनता विकट परिश्रम है ।

मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि स्वामी दयानन्द जी आत्मानन्द सरस्वती को फूटी आंखों भी नही सुहाते । हमारा और आपका विचार चल रहा था, मगर न जाने क्यों स्वामी दयानन्द को गालियां देने लग गए । स्वामी जी सूर्य की ओर थूकना अच्छा नहीं है, मैं आपको सावधान करता हूँ । हमारा और आपका विचार हो रहा है । किसी अन्य मान्य व्यक्ति के लिए अपशब्द लिखना उचित न होगा।
क्या यह अच्छा न होगा कि जहानाबाद से लिखने की अपेक्षा कानपुर में ही आकर आर्य समाज, शब्द के ऊपर स्वामी जी विचार कर लें ।
श्री स्वामी जी महाराज का उत्तर-

हशंकरेति स्थितिमत्र पद्ये, बिहाए हे स्यात्कथ मूषरात्मन् ।
उपेन्द्रवज्रा जतज्पस्ततोगौ, विलोका खेदेऽव्ययमाह शाब्दम् ।।१।।
हे चाहिए यह विलक्षणता नई है, खेदार्थ अव्यय हकार लिखी गई ।
हे धूर्त लेख कहि बालक बॉचि मोहै, भूदेव के कर नही असलेख सोहैं ।।२।।

आपका द्वितीय पत्र केवल ‘ओ, तीन, म हलन्त’ शीर्षक वाला मिला । ज्ञात हुआ कि प्रणव स्वरूपाकृति के सिद्ध करने में निरूतर हुए ।

१. अन्धा जब अन्धे के पीछे लगकर गर्त में गिरता है, तब मार्ग-प्रदर्शक के वचन-स्मरण करता हुआ, इसी भॉति पश्चाताप करता है । स्मृतियॉ वेदार्थ ही है । परन्तु “जातान्धस्य रूपज्ञानं न भवति” जन्मान्ध पुरूष को रूप का ज्ञान नही होता । ‘शुक्ल यजुर्वेद संहिता” के तीसरें अध्याय में देख लेना था , ५६ जातियों के नाम सहित देवताओं तथा व्यापार व्यवहारों के भली भांति प्रकाशित है । यदि दस्यु शब्द के समान गुणवाची जातित्व प्रदर्शक शब्द माने जाए, तो १५८ प्रकाशित किए गए है । ‘ब्राह्मणें ब्राहम्णं’ इस पांचवी कण्डिका से आरम्भ करके एकविंशी कण्डिका पर्यन्त सत्रह मन्त्र है। यदि इतने में सन्तोष न हो, तो आचार्य के समीप जाकर प्रत्येक संहिता को सभाष्य स्वाध्याय कीजिए ।

२. जहां तक मैनें ग्रन्थों का अवलोकन किया है धन्यवाद है आपको । जबकि पुरूषसूक्तान्र्तगत मन्त्र (य० ३१.११) ‘ब्राहम्णोऽस्य मुखामासीत् है । इसके देखने को अन्याय ग्रन्थ आपने देखे, परन्तु इस मन्त्र में आपकी जातिवाची धातु न देख पड़ी । महाशय ! ‘पदभ्यांय शुद्रों अजायता’ अजायत ‘जनि प्रादुर्भावे’ धातु की क्रिया पद है । जाति शब्द भी इसी ही धातु का रूप है । भाष्यकार महीधराचार्य भी इसी प्रकार लिखते है- ‘ब्राहम्णः ब्रह्मत्वं जाति विशिष्ट पुरूषोऽस्य प्रजायते-मुर्खमासीत् । केवल मेरा ही कथन नही है, किन्तु प्राचीन भाष्यकार भी ऐसा ही लिखते है तथा ऋ० ८.४.१६ में सायणाचार्य भी इसी प्रकार लिखते है । परन्तु आपको दिखाई दिया ‘वर्ण’ शब्द, जिसका पताा ही नही है । कहानी आधाराधिकरण बाद की दिखाई गई । वर्ण के माने रंग के है और वर्ण के माने जाति के भी है । परन्तु इस मन्त्र के भाष्याकार उच्चट, महीधर और सायणाचार्य ये तीनों महाशय वर्ण शब्द का प्रयोग नही करते है, किन्तु जाति शब्द का ही प्रयोग करते है । ‘यह जातियां व्याप्य है’ यह लेख आपका और ही भाव का है । कार्य करण के हेतु से व्याप्य-व्यापकत्वोरापण है, अतएव यह लेख व्यर्थ है ।

३. “वेद में आर्य और दस्यु दो ही प्रकार के मनुष्यों का वर्णन मिलता है, वही आपका पुराना गीत चालू हुआ । हे ऊषारात्नम् ! दस्यु शब्द गुणवाची है, आर्य शब्द रूढ़िगत जाति वाची है । आपका ही प्रमाण है- ‘आर्यईश्वरपुत्रः’ यहाँ पर ईश्वर शब्द भाववाची है । अतएव ‘परमात्मा का पुत्र लिखा है’ ऐसा लेख बहुत असंगत है । जिस मन्त्र में यह विषय है, वह इस प्रकार है-

एवं बृकेणाश्विना वयन्तेषां दुहन्ता मनषाय दस्ता ।
अभि दस्युं-वकुरेणा धमन्तोरूज्योतिश्चक्ररार्याय ।।

(ऋ० १.११७.२१) 'मनुषाय' शब्द का विशेषण 'आर्याय' शब्द है । सायणाचार्य आचार्य का अर्थ 'बिन्दुषे' करते है अर्थात विद्वान ब्राहम्ण के अर्थ । यहाँ पर आर्य शब्द का जातित्व विद्वान शब्द से ही झलकता है । शूद्र को वेद का अनाधिकार होने से द्विजाति का बोध होता है । परमात्मा विश्व का कारण है, परन्तु कार्यस्वरूप में जातित्व आदि का कल्पना है । इसी प्रकार आर्य शब्द को ईश्वर पुत्र अर्थात ऐश्वर्य पूर्ण सम्राट, तिसका पुत्र जानना चाहिए । 'दस्यु' उपक्षय कारिणं असुर पिशाचादिकं-ऐसा सायणाचार्य लिखते है ।अतएवं दस्यु शब्द गुणवाचक ही है कृपया 'आर्यसमाज' वाक्य के विषय में वेद-वेदांग-प्रमाण लिखिए, कि पूर्वाक्त तेली, तमोली, चमार, कलार तथ्ज्ञा यवन, ईसाई आदिकों का समाज 'आर्य समाज' हो सकता है । आर्य तेली, आर्य चमार, आर्य कायस्थ इत्यादि का प्रयोग किस सूत्र से और कैसाा होता है ? भूदेव जी को स्मृति की शरण जाना पड़ा । अस्तु ।

४. आपका कथन मनु महाराज के अनुकूल
'मुखबाहुरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेक्ष वाचश्चार्य वाचः सर्वजे दस्यवः स्मृता ।।
भी द्विजाती से भिन्न दस्युत्व के अधिकारी है । आप लिखते है- 'ब्राहम्णादि शूद्रान्त सब आर्य है' यह मुखबाहूस्पज्जानां का अर्थ । धन्य है आपकी विद्वता को, कि प्रसंग को देखते हुए चारों वर्ण वालो से पृथक जितनी भी जातियां है, सब दस्यु है और ब्राहम्णादि शुद्रान्त सब आर्य है । भला विचार पूर्वक अन्वय भी पूर्व प्रसंग-लेते हुए किया होता । ''लोके मुखबाहूरूपज्जानां बहिः याः जातयः म्लेक्ष वाचः ते सर्वे दस्यवः स्मृता'' अर्थात ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्व तथा शुद्रों की क्रिया के लोप आदि से बाध्य हुई जो जातियां हैं वे म्लेक्ष भाषा अथवा आर्य भाषा के बोलने वाले सब दस्यु है । यहाँ पर भी दस्युत्व गुण ही रहा । ज्ञात हुआ कि आप आर्य शब्द के उत्तरावर्ती 'समाज' शब्द की संगठन, सार्वजनिक समाज की स्थिति में प्रमाण नही दिखा सकते है । जबकि जातिवाचक शब्द के साथ गुणवाचक शब्द का प्रयोग विशेष्य-विशेषण भाव में हो ही नही सकता है ।

५. धोखा देना आर्यो का काम तो नही है, परन्तु दस्युओं का काम तो है । क्योंकि अजमेर तक तो सूझी, परन्तु स्वर तथा पूर्ण मन्त्र तथा अनुवाकोपक्रम सूक्त न सूझ पड़ा ।

६. वाह ! वाह ! बानगी अच्छी दिखाई गई । यदि व्याकरण तथा छनद पूर्वागं भली-भाँति पढ़े गए होते, तो ऐसी बानगी कैसे दिखाई जाती । है शैलसारासय । 'हशशंकराचार्य मतच्युत ।' यह 'उपेन्द्रवज्रा' वृत्त है, जिसका लक्षण है 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततागौ । वृ० र० जगण, तगण और जगण तथा दो गुरू वर्ण उपेन्द्रवज्रा

के एक पाद में होते है और ह इति खेदे हकार खेद के अर्थ में अव्यय शब्द है । 'शंकराचार्य मतच्युत" सम्बोधन विभक्तयन्त स्वयमेव सिद्ध है । 'हे' यह गुरू वर्ण आदि में नही हो सकता है (गुरूमध्य गजो) जगण मे मध्य का वर्ण गुरू होता है । अतएवं लिखी गई थी ।

७. दूसरे पृष्ठ की दसवीं पंक्ति में आर्य शब्द का उत्तरावर्ती समाज शब्द किस वेद-वेदांग में है ऐसा लेख है । ज्ञात हुआ कि आप प्रमाण नही दे सकते है । जन्मान्ध पुरूष को रूप ज्ञान होता ही नही, भला ज्ञानान्ध को शब्द ज्ञान कहाँ से हो ?

८. मुझे दयानन्द जी का यह अनुचित सार्वजनिक समाज 'आर्य समाज' वाक्य से उच्चारण करना तथा लेखन करना शास्त्र विरूद्ध होने से अच्छा नही लगता । दयानन्द जी तो अब भुतल पर रहे ही नही, 'दयानन्द नही, सुहाते' - यह भुदेव का लिखना अशुद्ध तथा व्यर्थ है ।

९. भूदेव को चाहिए कि अपने लेख में अपशब्द विचार के साथ लिखें उसी पर उत्तर होता है ।

१०. जब लेख द्वारा विचार हो रहा है, तब किसी पत्ते से लेख लिखा जाए । यदि कुछ विचार करना है तथा प्रमाण लिखना है तो 'आर्यसमाज' वाक्य पर लिखिए, वृथा पिष्ट-पेषण निस्सार ही है । वेद वेदांग, इतिहास, पुराण काव्य और नाटकादिकों में भी बिना समाज के समातारोप तथा समाजी कहना, ऐसा अंसगत लेख कही भी नहीं है ।

जिस समय समाज लगें, जब उसी समाजस्थ को समाजी कहेगें । भला यही सोच लिया होता, कि समाज स्थान सहित, समाज स्थिति सर्वत्र तथा सर्वदा रह नही सकतीं, तो सदैव कहने तथा लिखने का 'आर्यसमाज' या 'आर्यसमाजी' अत्यन्त मिथ्या व्यवहार है । बहुत ही, अच्छा होता यदि भूदेव जी अपने मुखबाहूरूपज्जानों लेखानुकूल 'आर्यसमाज' के बदले 'दस्युपन्थ (मत) बदल देते । क्योंकि मत तथा पन्थ के स्थान में 'समाज' शब्द अत्यन्त असंगत है । प्रमाण भी मिलता है-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जंघन्य-माना परियन्तिमुढ़ाः अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।

(मुण्ड० २.८)

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

इसके उत्तर में भूदेव जी की और से पत्र-

खुला चैलैन्ज

आर्यसमाज रेल बाजार का स्वामी आत्मानन्द सरस्वती कोड़ा जहानाबाद को

"यस्तर्केणानुसंघत्ते सधर्म वेद नेतरः" (मनु०) ।

सज्जनों आर्य समाज रेल बाजार कानपुर प्रतिवर्ष अपने उत्सव पर अन्य मतावलहम्बियों को शंका-समाधान का अवसर देता है । इस वर्ष भी उसी प्रकार सबको सप्रेम निमन्त्रण दिया गया है । परन्तु इस वर्ष यह आर्य समाज स्वामी आत्मानन्द सरस्वती कोड़ा जहानाबाद को शास्त्रार्थ के लिए आग्रह से बुलाता है । आप 'आर्य समाज, मुर्तिपूजा, आदि जिस किसी भी विषय पर चाहे शास्त्रार्थ कर सकते है । उपरोक्त स्वामी जी यदि शास्त्रार्थ के लिए न पधारें, तो क्या समझा जायेगा, यह लिखने की आवश्यकता नही है। कविरत्न पं० अखिलानन्द जी भी इस असवर पर सप्रेम निमन्त्रित है आपका भी उत्सव पर शास्त्रार्थ के लिए पधारना आवश्यक है ।

निवदेक- भूदेव बी०ए० शास्त्री

उपर्युक्त पत्र के साथ भुदेव जी का हस्त-लिखित पत्र भी आया । पत्र निम्नलिखित है।

श्री स्वामी जी ।

कृपया आप हमारे निमन्त्रण को अवश्य स्वीकार करें । आपके विचार कई बातों में आर्य समाज के विरूद्ध है और उन पर गम्भीर विचार करने के लिए आप उद्यत प्रतीत होते है । समाज के इस उत्सव से बढ़कर और कौन सा ऐसा समय मिलेगा, जहाँ विद्वान लोग उनका निर्णय कर सकें । हम आपकों इसके लिए सादर निमन्त्रित करते है और आशा है आप उसे अवश्य स्वीकार करेगें ।

निवेदक - भुदेव, मंत्री

इसका उत्तर श्री स्वामी जी महाराज ने वैशाख शु० ६, संवत् १६७७ को बैतूल से इस प्रकार लिखा :-

श्रीयुत् पण्डित भूदेव जी !

आपका हस्तलिखित निमन्त्रण-पत्र मिला, पढ़कर प्रसन्न हुआ । उत्तर में निवेदन है- महाशय ! आपे साथ मेरा प्रश्नोत्तर रूप से विचार 'आर्यसमाज' वाक्य पर लेख-द्वारा हो रहा है । मौखिक नही । अतएव मौखिक के निमित्त निमन्त्रण देना व्यर्थ ही है । आपके दूसरे पत्र का उत्तर मैं छपा चुका हूँ । दो मास व्यतीत हो चुके, आज तक मेरे पत्र का उत्तर आपा नही छपा सकें । 'मुर्तिपूजा' के विषय में आप मेरे साथ

जहानाबाद में विचार कर चुके है । यदि आपकी किसी प्रकार वैदिक व्यवस्था में प्रतिकूलता का भ्रम हो, तो लेख द्वारा प्रकाशित कीजिए, अवश्य उत्तर होगा । आपके पत्र के साथ में छपा 'खुला चैलेन्ज' शीर्षक 'देवनागरी-भाषा के कोषों में से किस कोष से ढुढ़ा गया है । बज्जक समाजियों के ऐसे ही ऊटपटांग लेख हुआ करते है । यह उन लोगें का स्वभाव ही है जब आप लेख द्वारा वाद-प्रतिवाद कर रहे है, तो बेचारे 'खुला-चैलेन्ज' की दुंदशा क्यों किए डालते है ? इस प्रकार लेख द्वारा बाद में बेचारे खुले चैलेन्ज की कहाँ तक आवश्यकता है ? पाठक गण स्वंय जान लेगें । अस्तु 'आर्य' शब्द की मीमॉसा दिखाकर, अब मैं अपने लेख को समाप्त करता हूँ ।

'आर्य शब्द वैदिक शब्द है । वेद (मन्त्र-ब्राहम्ण) में बिना स्वर का शब्द ही नहीं है । हेतु यह है कि एक-एक शब्द के कई-कई अर्थो में स्वर के सहारे उल्लेखन किया है । जैसे 'आर्य' शब्द दो अक्षरों का है । स्वर तीन प्रकार -उदात्त, अनुदात तथा स्वरित से उच्चरण किया जाता है । अतएव 'आर्य' शब्छ का तीन ही प्रकार से उचारण किया जा सकता है । तथा लेख भी तीन ही प्रकार से होता है । जैसे 'आर्य' अन्तोदात, 'आर्य' आद्युदात्त और 'आर्य' स्वरित (समान स्वरक) । स्वामी के अर्थ बोधक भाव मे 'अन्तोदात्त आर्य' शब्द है । वैश्व के अर्थबोधक में आद्युदात्त आर्य शब्द है । ब्राहम्ण और कुमार के अर्थ बोधक भाव में अर्थात इन शब्दों के पूर्व संगठन लेख तथा उच्चारण में (आर्य ब्राहम्ण और आर्य कुमार) 'आर्य' शब्द 'समान-स्वर' वाला होता है । अतएव 'आर्य' शब्द का प्रयो पूर्वोक्त (स्वामी, वैश्व, ब्राहम्ण तथा कुमार) संज्ञा वाले शब्दों के अर्थ में अथवा लेखन-क्रम-वाक्य-संगठन में होता है । अन्यथा (समाज, तेली, तमोली, कायस्थ आदि में) नही होता है । इस विषय में प्रमाण दूसरे और तीसरे पत्र में लिख चुका हूँ । अब किसी भी प्रकार से इस (आर्य समाज) भेदसिल वाक्य को पृथ्वी तल पर सांगवेद के प्रमाणों-द्वारा सिद्ध कर दिखाने वाला पुरूष है नही, बत्यन्त अशुद्ध-मिथ्या होने से । आप लोग अंधररी रात में अन्धकार-दूर करने के निमित्त ज्योतिरिगंण (जुगनू) का सा साहस वृथा ही करते है । आप लोगों ने 'आर्य' शब्द की कितनी दुर्दशा की है- आर्य समाज, आर्य मन्दिर, आर्य भवन, आर्य कायस्थ आर्य कलार, आर्य चमार आदि के लिखने में लेखनी का मुख मर्दन हुआ जाता है । आज तक भारत मे देवनागरी-भाषा के कवियों ने भी ऐसे ऊटपटांग लेख नही लिखें । यह तो मैं जानता हूँ कि आप लोग अपने हट को नहीं त्यागियेगा । परन्तु

सॉच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप ।
जाकै हिरदै सॉच है, ताके हिरदे आप ।।

यदि आप ऐसे वैदिक शब्दों की वृथा दुर्दशा न करे, तो अच्छी बात है । मेरे आप शत्रु नही है । साधु का धर्म है कि सत्योपदेश करे, तो अच्छी बात है । मेरे आप शत्रु नही

है । साधु का धर्म है कि सत्योपदेश करे । अतएव उपदेश किया गया है । आगें आपकी इच्छा पर निर्भर है, जो चाहे सो लिखिए- पढ़िये । शमिति ।

स्वामी जी आत्मानन्द सरस्वती

श्री स्वामी जी महाराज के प्रश्नोंत्तर कितने सारगर्भित, मार्मिक तथा वेद-शास्त्रानुकूल होते रहे, इस शास्त्रार्थ द्वारा जाना जा सकता है । आर्य समाजी वेद का नाम लेते है, किन्तु अपने मन के अनुसार उनके अर्थ करते है । मौखिक शास्त्रार्थ में इधर-उधर की बातें कर, मुख्य विषय को लुप्त कर देते है । किन्तु लेख-बद्व शास्त्रार्थ की पकड़ में शीघ्र आ जाते है । इसीलिए लेखबद्व शास्त्रार्थ से कतराते है । श्री स्वामी जी महाराज से आर्य समाजी सदैव निरत्तर हुए । किन्तु अपना आग्रह कभी नही छोड़ा । ऐसे लोग का कभी भी कल्याण सम्भव नही है और न उनसे अन्य लोगों का कल्याण सम्भव है ।

श्री गान्धी जी से वार्ता और कांग्रेस प्रचार

श्री स्वामी जी जितने वैदिक धर्मानुयायी, सत्योपदेशक और आत्मनिष्ठ थे, उतने ही स्वातन्त्रय प्रेमी भी थे । देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में भी उनका अतीव सहयोग रहा । ऐतिहासिक नागपुर-कांग्रेस अधिवेशन में आपने भाग लिया । वहाँ श्री गांधी जी ने आपसे प्रार्थना की ''आप जैसे सन्यासी, महात्माओं का जनता पर प्रभाव है । यदि आप देशी की स्वतन्त्रता के लिए जनता को प्रेरित करेगें, जो जनता का प्रेरित करेगें, तो जनता असहयोग-आन्दोलन में सहर्ष सहयोग करेगीं ।

''इस समय विदेशी शासन के विरूद्ध प्रचार करने पर कारागार जाना ही सम्भव होगा?''

''कारागार जाना भी हो सकता है'' श्री गान्धी जी ने कहा ।

''कारागार-जाना सन्यासी के लिए मैं उपयुक्त नही समझता । किन्तु जनता हो असहयोग आन्दोलन के लिए प्रेरित करना, स्वतन्त्रता भावना का जाग्रत करना और कांग्रेस के प्रति जनता को आकर्षित करने का प्रयत्न अवश्य करूगाँ ।'' श्री स्वामी जी महाराज ने आश्वासन दिया ।

अब जनता में प्रचार-करने लगे । वदे शास्त्र के वाक्यों का उदारण देते हुए, आत्मा-परमात्मा की व्याख्या करते और साधनों में स्वतन्त्रता का महत्व बतलाते थे । स्वतन्त्रता-विरोधियों के विरूद्ध संघर्ष के भी आह्यन करते थे । आपकी प्रतिपादन शैली से जनता में जाग्रति होती और वह सक्रिय सहयोग देना स्वीकार करती थी । शासकों ने गुप्तचर नियुक्त किए । वह श्री स्वामी जी के व्याख्यान लिखते थे । एक बार सभी की समाप्ति पर श्री स्वामी जी ने एक गुप्तचर से पूछा- ''जिस वेद मन्त्र की हम व्याख्या कर रहे थे, उसे लिया या नही?''

''नहीं, उसकी कोई आवश्यकता नही'' उसने उत्तर दिया ।

"देखो, हमने वेद-मन्त्र की व्याख्या मात्र की है । व्याख्या लिखों और मन्त्र न लिखो, यह अन्याय है । या तो दोनो लिखो, या कोई भी न लिखो ।" श्री स्वामी जी ने कहा । तब गुप्तचर लिखित व्याख्यान को फाड़ कर फेंक देता । श्री स्वामी जी के प्रयत्न से जनता में जाग्रति हो गई ।

समाचार पत्रों द्वारा भी स्वामी जी प्रबुद्ध जनता में प्रचार करते थे । उन्होनें अनेक लेख लिखें एक लेख "भारत मित्र' में मार्गशीर्ष कृष्ण १० सम्वत् १६७७ को प्रेषित किया था । वह निम्नाकिंत है :-

"हे सत्वानुरागी सज्जनों ! भारताऽर्तबन्धुवर्ग गणों ! आप लोगें से प्रार्थना पुर्वक अनुरोध है, कि मैं सनातन धर्मान्तर्गत स्वंय सिद्ध 'अहसयोग' को स्वत्तवाभिभव प्राप्त्यर्थ संजीवनापवर्द्धन दसवर्ष से कर रहा हूँ । परन्तु मैं सत्वगुण प्रधान मानकर, ब्राहम्ण जाति से इसका उद्धार निश्चित कर अपना समय व्यतीत किया । अब उसका उदय 'महात्मा गांधी जी' के द्वारा रजोुण प्रत्यन से हुआ है । यह अद्वैत सिद्वान्त का स्वरूप है । परन्तु रजोगुणी हेतु से साम्ग्रत्योगहित वेश में है । इसके राजनीति अविष्कार, पदार्थ विज्ञान, शिल्प, भाषा और शासन के ये छः अंग हैं । कूटनीत, राष्ट्रभाषा, विविध व्यापार, स्वार्थ साधन, स्वाभिप्रायगोपन और वस्तु संग्रह ये छः उपागं हैं । यदि सागोंपागं भारत में धर्मराज का अभ्युदय हो जाए, तो आर्तप्रजा "भारत प्रजा" अद्वैत सुख-प्राप्त कर, श्री धी, स्त्री से युक्त हो, अन्त में मुक्त होगी । धर्म की उपासना के दो रूप है ज्ञान और कर्म । अतएव महात्मा गांधी जी ने कर्म रूप की उपासना का सम्पादन करना आरम्भ किया है । वर्णाश्रम -विवेक ज्ञान-प्रद है । पूर्वोक्त सागोंपागं कर्म ही स्वराज्य-प्रद है । इसके साधन में वर्णाश्रम की ओर दृष्टि देने की आवश्यकता नही है । भारतवासी मात्र (हिन्दु-मुसलमान) सागोंपागं यदि अद्वैत सिद्वान्ती (असहयोगी) हो जाए, तो पूर्णमिदं पुर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। इस मन्त्र का अर्थ 'स्वराज्य' आप लोगें को प्राप्त हो जाए । इसका अर्थ है : एक अद्वितीय '१/०' स्वराज्य सुखरूप कर्म-फल है, इससे प्रथक् 'पूर्णमिदम्' - १/० ए ता से पूर्ण राजनैतिक सागोंपागं १२/१ निकलते हैं - १/०-१२/१=१-०/०=१/० परन्तु अद्वैत का क्षय नहीं होता । 'पूर्णस्य पूर्णामाद य पूर्णमेवावशिष्यते' - फिर पर्ण अर्थात अद्वितीय 'ऐका प्रेमास्पद' वस्तु को समस्त सागोंपागं '१२/१' प्राप्त होकर, '१/०+१२/१=१+०/०=१/०' पूर्ण 'स्वराज्य' सुख प्राप्त होता है । अतएव आधुनिक शिक्षा आदिक प्रयोगों में छूत-अछूत जाति आदि का विवेक नहीं करना चाहिए । यह किसी के चित्त में ऐसे तर्क उठें । तो वह सज्जन मुझ देश सेवक से प्रश्नोत्तर करें । किन्तु महात्मा गांधी का वित इन विषयों की ओर न आकर्षित करें । उनको प्रवाहित धारा में कृतकार्य होने दें ।"

इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज का प्रचार का ढ़ंग निराला था । इसी से धार्मिक जनता से पूर्ण सहयोग किया । भारत स्वतन्त्र हुआ । किन्तु 'पूर्ण स्वराज्य

मृग-मरीधिका’ ही सिद्ध हुई । जब तक वेद-शास्त्रानुकूल धर्माचरण न होगा, तब तक न पूर्ण कर्म होगा, न ज्ञान । फिर इस फल ‘स्वराज्य’ कैसे मिल सकता हैं? स्वतन्त्रता पूर्वक अपने परमात्मास्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही ‘पूर्ण स्वराज्य है और यही अद्वैत निष्ठा है वर्णाश्रमनिहित कर्म उपासना तथा ज्ञान- द्वारा यह आत्म निष्ठा प्राप्त होती है ।

'अतिवर्णाश्रमी' पद-प्राप्ति

श्री स्वामी जी महाराज गंगा-तट भाऊपुर में लगभग १९८० तक रहे । इसके अनन्तर भक्तगणों की प्रार्थना पर 'जमालपुर' में कुछ वर्ष निवास किया । पुनः जहानाबाद के भक्तों के आकर्षण के कारण यहाँ पधारे । जहानाबाद के प्रसिद्व रईस तथा जमींदार श्री आद्याशरण जी के अनुरोध पर 'सोरही' में निवास करना स्वीकार किया । सोरही जहानाबाद नगर से बाहर एक भव्य भवन है । चतुर्दिक वन तथा क्षेत्रों की शोभा अतीव सुन्दर है । यह मनोरम स्थान है । यहीं श्री स्वामी जी ने निवास किया और सम्वत् १९८३ में घोषणा की- मैं समस्त वर्णाश्रम-धर्म सम्बन्धी व्यावहारिक अधिकार त्यागता हूँ । तभी से आपने अतिवर्णाश्रमी एवं अवधूत संज्ञा प्राप्त की । शास्त्रों में अतिवर्णाश्रमी के लक्षण कहे गये है । एक-दो लक्षण दृष्टव्य हैः

यस्य वर्णाश्रमाचारो गलितः स्वात्मदर्वनात् ।
सर्वंर्णानाश्रमान्सर्वानतीन्य स्वात्मनिस्थितः ।।
योऽतीन्य स्वाश्रमान्वर्णानात्मन्येव स्थितः पुमान् ।
सोऽतिर्वर्णाश्रमी प्रोक्तः सर्ववेदान्तवेदिकमः।।

(सूत सं० ३.५.३१.३२)

''-जिसका स्वात्म दर्शन से वर्णाश्र-व्यवहार गलित हे गया है, वह वर्णाश्रम तथा उसके व्यवहार से ऊपर उठकर-अतीत होकर, अपने आत्मा में स्थित है । जो पुरूष स्वाश्रम तथा वर्ण से अतीत होकर, आत्मा में स्थित है वह समस्त वेदान्त-ज्ञाताओं द्वारा अतिवर्णाश्रमी कहा जाता है । अवधूत के लिए उपनिषद् में कहा है ।

अवधूतस्त्वनियमोंऽमिशस्तपतित वर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेध्वजगर वृत्तयाहारपरः स्वरूपानुसन्धानपरः । (नारद पं० उ० ५)

"- अवधूत को तो कोई नियम नही है । नीच-पतित-वर्जनपूर्वक, सब वर्णो मे अजगर-वृत्ति से आहार तथा सवरूपानुसन्धान परायण होता है ।" सन्यास में अवधूत सर्वोच्च स्थित कर घोतक है । वह सदैव आत्मानन्द रमण करता है । व्यावहारिक वर्णाश्रम तथा शरीर का कभी ध्यान नही करता । ऐसे ही थे श्री स्वामी जी महाराज । इसी से 'अतिवर्णाश्रमी' तथा 'अवधूत' नाम से कहे जाते थे ।

'चित्कलोपनिषद' की रचना

सम्वत् १९७९ में 'चित्कलोपनिषद्' की रचना की । यह ग्रन्थ यद्यपि कलेवर की दृष्टि से अतीव लघु है, केवल १७ श्लोक है, तथापि भाव-गम्भीर-दृष्टि से अति विशाल है । मूल ग्रन्थ सम्वत् १९८० में श्री भगवदत्त जी अग्निहोत्री, जहानाबाद निवासी द्वारा प्रकाशित

हुआ । पश्चात् संस्कृत व्याख्या तथा हिन्दी टीका सहित संवत् १९८२ में पुनः प्रकाशित हुआ । यह शिखरणी छनद में है । एक-दो श्लोकों का रसास्वादन करिए ।

शिवोहं ब्रह्माहं पशुपतिरहं श्रीपतिरहं,
त्वहं चिच्वित्कलयं खक शिखिजलोर्व्यादिकमहम् ।
द्विजोहं शूद्रोहं क्षितिपतिहै गोपतिरहें,
विशुद्धात्मानन्दोस्म्यमरवर बोध्य कमिजि ऊँ ।।४।।

''-मैं परम कल्याण स्वरूप शिव हूँ, उत्पत्ति ब्रह्मा हूँ संहारक रूद्ध हूँ, पालक लक्ष्मीपति विष्णु हूँ, मैं चेतन कलारूप शक्ति हूँ और मैं चेतनता से कल्पित होने योग्य विश्वरूप हूँ । मैं आकाश, वायु, तेज, जल तथा भूमि आदि कल्पित सृष्टि हूँ । मैं ब्राहम्ण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ तथा शूद्र मैं हूँ । देवों मे श्रेष्ठ प्रजापति आदि से जानने योग्य आनन्द रूप प्रणव मैं हूँ एवं अद्वितीय, परिपूर्ण, विशुद्ध आत्मानन्द में हूँ ।

यवा क्षीवः क्षुब्धः प्रलपित गिरां मोहितधिया,
तथैवायं स्वात्मानुभवति न चिदात्मा जगदिति ।
यदानुत्पन्नं खं नयनं पथहीनं प्रभवति,
तदा ब्रह्मैवेदं सदसदवहीनं श्विमयम् ।।७।।

''-जैसे मदिरा-पान से पुरूष बुद्धि-विभ्रम में कारण 'मैं राजा हूँ, यह मेरा ऐश्वर्य है आदि मिथ्या प्रलाप करता है वैसे ही चिदात्मा ब्रह्म संसार का अनुभव करता है । अर्थात सृष्टि-भाव की लीला मात्र करता है एवं जीवात्मा भी उसी प्रकार 'मैं ब्राह्मण हूँख मै सुखी-दुःखी हूँ, मैं पुत्र पौत्र वाला हूँ, आदि भावों का मिथ्या प्रलाप करता है । जैसे मदिरा-मद शान्त होने पर, पुरूष अपने वास्तविक स्वरूप को जानता है, वैसे ही अज्ञान-मद-निवृत्त होने पर, जन्म मरणरहित, नित्य आनन्द स्वरूप, दर्शन करता है तथा उसकी दृष्टि में संसार की अभाव हो जाता है । उस समय सत्-असत् अर्थात कार्य-कारण शुन्य शान्त स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है । सब एकमात्र शिव ही है और वह मैं हूँ ।

अहो खं ब्रह्माहं विगत भवजालं द्युतिमयं
गुणातीतं शुद्ध विविध बुध वेद्य श्रुति परम् ।।
निरीहं निर्वाणं भवभयविहीनं शिवपदं,
विशुद्धात्मानन्दोऽस्मयमर वर बोध्य कमिति ऊँ ।।८।।

''- अहों अपनी परशक्ति चित्कला में मोहित, मिथ्याभिमान से जन्म-मरणशील हो रहा था । किन्तु अब मैं समस्त संसार-जाल से रहित, सत्व, रज तथा तमोगुण से अतीज, प्रकाशमय, अनेक विद्वानों -द्वारा जानने-योग्य, श्रुति से श्रेष्ठ, संसार-भय से शून्य, निरिच्छ, कैवल्यस्वरूप, शिवपद और देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी आदि द्वारा जानने-योग्य, आनन्दस्वरूप तथा प्रणवस्वरूप, ब्रह्म, विशुद्ध आत्मानन्द ही हूँ।''

इस 'चित्कलोपनिषद्' की रचना मार्मिक, हृदयग्राही और प्रभावकारी है । संस्कृत-व्याख्या में जाग्रदादि सोलह अव्यवस्थाओं का वर्णन अतीव सुन्दर है । वेदान्त-प्रेमियों की यह अमूल्य निधि है ।

"आनन्द-दर्शन"

श्री स्वामी जी महाराज ने दार्शनिक शैली का एक ग्रन्थ भी लिखा- "आनन्द-दर्शन" अथवा "आत्मानन्द-सुत्रम्" । इस पर वासनाभाष्य भी संस्कृत मे ंश्री स्वामी जी ने लिखा । इसका प्रकाशन सम्वत् १६८१ में कलकत्ता से हुआ । द्वितीय संस्करण हिन्दी गद्य-पद्यात्मक टीका सहित कानपुर में सम्वत् १६८२ में प्रकाशित हुआ । इस ग्रन्थ में ४ पाद और १०१ सूत्र हैं । प्रथम सूत्र है- "अथात आत्मानन्दः" और अन्तिम सूत्र है- "आत्मानन्द उपरामात्" । इसमें जगत का मूल कारण क्या है ? जगद्रचना में अन्य कोई सहायक है या नही ? जगद्रचना कैसे हुई ? मूलतत्व स्वयं ही जगद्रूप से विवर्तित है या जगत पृथकह है ? आत्मा `स सम्बंध है और मुक्ति कैसे होती है? आदि विषयों का विवेचन किया गया है । इस प्रकार यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है । श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नित्य मनन करने से, इसका अभिप्राय समझ में आता है । इसका ज्ञान होने पर, प्रत्यग्भिन्त्र, परब्रह्म, परमात्मा का करामलकवत् साक्षात्कार होने लगता है ।

"आत्मानन्दामृत घटम्"

श्री स्वामी जी महाराज-द्वारा लिखित 'आत्मानन्दामृत घटम्' हिन्दी पद्य में एक ग्रन्थ है । इसका प्रकाशन सम्वत् २००२ में लखनऊ से हुआ । इसमें १६ अंजलि है । प्रत्येक अंजलि भिन्न-भिन्न छनद में रचित है । स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महारिण शरीर का मार्मिक विवेचन है । साधन, महाकाव्य, स्वानुभव तथा मोक्ष अनेक विषयों का इसमें वर्णन किया गया है । कल्याण का भी पुरूष के लिए यह ग्रन्थ भी बड़ा ही उपयोगी है । एक-एक छनद में वेदान्त का सार निचोड़ कर रख दिया गया है । एक-दो छनद पर दृष्टि डालिएः -

लखहु नयन से जो त्याग दो कल्पना है,
कहियत जिसको जो त्याग दो जल्पना है ।
स्वतनु तजि रहै जो जो सच्चिदानन्द होई,
विलशत परमात्मा जानिए आप सोई ।।

मैं एक हूँ और वह एक जौ लौ, नाशै नहीं-करी कुबुद्धि ।
विशुद्ध चित्ते समता न आती, तौ लौ नही ब्रह्म-पदाप्ति होती ।।
नाशै न जीवेश्वर- भेद-भाव, दोनों पदों का नहिं ऐक्य जौ लौ ।

विनाशय घी-भेद अलक्ष्य-शुद्ध, स्वरूप की प्राप्ति नही कदापि ।।
किया नही शोध पदभयों का , जौ लौ अवस्था नही उन्मनी है ।
विनाशि का औ अविनाशि का भी, किया नही निर्णय ऐक्य भाव ।।
होता नही कारण-कार्य-भाव का, ज्ञान जौ लौ सत् चित् पदों का ।
आनन्द का ज्ञान नहीं हि तौ लौ, मुक्ति कहाँ ज्ञान-बिना किसी का ।।

इनके अतिरिक्त और भी छोटे-बड़े ग्रन्थ श्री स्वामी जी द्वारा लिखित है और वह प्रकाशित भी हो चुके है।

जगत् की प्रलयोत्पयत्ति कैसे और कर्ता कौन ?

'एकहि द्वैत बिना सदा शम्भु सच्चिदानन्द ।
सरस्वती उत्तर किए विलशत आत्मानन्द ।।

''यह तो स्पष्ट ही है कि जो भी दृश्य है, वह नाशवान है । कुछ क्षण, कुछ वर्ष, कुल काल के उपरान्त वह अवश्यमेव नष्ट हो जाता है । इस पृथ्वी लोक में उत्पन्न होने वाले जीव तीन स्थानों में जाते है - स्वर्ग (सूर्यमण्डल), पितृ लोक (चन्द्र मण्डल) तथा पृथ्वी । पुण्यात्मा एवं योगी अनादि पवित्र कर्मानुष्ठान कर्ता स्वर्ग से, स्वर्गीय सुख-भोग कर पुनः लौट आते है। रजोगुणी कर्म करने वाले मुनष्यादि साधारण तथा पितृलोक से आते है और तमोगुणी नरकोपभोग से पृथ्वी में प्रकट होकर, पृथ्वी में ही मिला करते है । इस पर यह शंका हो सकती है, कि पृथ्वी भी तो सूर्यादि (स्वार्गदि) लोको से सहित की जाती ही होगी? इस संबंध में श्रुति में कहा है प्रज्वलित अग्नि से जैसे विस्फुलिगं निकलते है और पुनः उसी अग्नि में लीन हो जाते है, वैसे ही यह सृष्टि भी परमात्मा से निकलती है और उसी में लीन हो जाती है। प्रलयविध श्रुति में इस प्रकार बतलाई गई है- जब प्रलय होने वाला होता है, तब पहले १०० वर्ष अवर्षण रहता है । तब पृथ्वी कण्डे की भांति भस्म हो जाती है, पृथ्वी पर की सृष्टि मिट कर सब भूमि में लीन हो जाती है । फिर इतनी अधिक वर्षा होती है, कि भस्तीभूत पृथ्वी धुलकर एकार्णव जलाकर हो जाती है । फिर सूर्यपिण्ड इतना अधिक तपता है, कि वह समूचा एकार्णव सूर्यपिण्ड में शोषित हो जाता है । इसके उपरान्त चन्द्रमा भी गलित होकर सूर्य में लीन हो जाता है । सूर्यपिण्ड वायुमण्डल में लीन होता है, प्रदीप्त अग्नि-शिखा की तरह वायु आकाश में मिलकर, आकाश नाद में और नाद बिन्दु में मिल जाता है । बिन्दु शम्भु स्वरूप ही है, अतः वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहता है ।

“निर्विकार परमात्मा अपनी महिमा में कितने काल तक प्रतिष्ठित रहता है इसको इस प्रकार समझिये- ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) मानव वर्षो का ब्रह्म-दिन होता है । ऐसे ३६० ब्रह्म दिनों का एक वर्ष होता है और १०० ब्रह्म वर्षो का एक महाकल्प होता है १५,५५,२०,००,००,००,००० (१५ नील, ५५ खरब २० अरब) मानव वर्षो का एक ब्रह्म कल्प होता है । यह काल विष्णु कल्प के एक दिवस के समान है अर्थात ब्रह्म कल्प के उतने ही हीरात्रिमान होने पर द्विगुण अहो रात्रिमान से कालमान ३१,१०,४०,००,००,००,००० (इक्कतीस नील, दस खरब, ४० अरब) वर्ष को होता है। इसको ३६००० से गुणा कर देने से ११,१६,७४,४०,००,००,००,००,००० मानव वर्षा के मान से विष्णु कल्प होता है । यह मानरूद्र के एक दिन के समान है । ३६००० गुणित रूद्र के दैनिक मान के बराबर रूद्र कल्प होता है । वह प्रणय (ऊँकार) कल्प का अहोरात्रि मान होगा । ३६००० गुणित प्रणव दैनिक मान प्रणव कल्प के बराबर होता है । इसी प्रकार प्रकृति कल्प, उसके बाद पुरूष कल्प फिर शक्ति कल्प, इसी भांति शिवकल्प, परब्रह्म कल्प और अन्त में अलक्ष्य कल्प होता है । उतने मान पर्यन्त परमात्मा अपनी महिमा मे प्रतिष्ठित होकर, स्वंयमेव निर्वाणरूवरूप, ज्ञानपूर्ण, निराकार, निर्विकारस्वरूप में सोते हुए मनुष्य के सदृश विराजते है । यह सब प्रविलय प्राच्च अबुद्धिपूर्वक ही चितिशाक्ति की स्फूर्तिमात्र में होता रहता है ।

“इसी प्रकार अबुद्धिपुर्वक ही तमस्वरूपिणी श्री महाकाली महाविद्या लक्षणवती परमात्मा की स्वापवती शक्ति में प्रविलापित विश्व की काल्पिक कालमानानुसार पुनः जागरितस्वरूप सिसृक्षा (सृष्टि रचने की इच्छा) लक्षणवती चित्स्फूर्ति, होती है । वही चित्स्फूर्ति स्वाभाविकी ज्ञान, बल और क्रिया रूप चार प्रकार की होकर अभिन्न निमित्तोपादान कारण परमात्मा में ही विश्वरूप (ब्रह्म) का प्रादुर्भाव लक्षणवान् अविष्कार होता है श्रुति मे ंकहा है कि प्रथम सिसृक्षारूप यथार्थ चिन्तित होकर, ‘सत्य’ अर्थात आकाश, वायु ये ‘त्यत्’ और तेज, जल तथा पृथ्वी यये ‘सत्’ दोनों मिलकर सत्यस्वरूप हुआ । यह परमात्मा के तपोरूप स्वमाहात्मय में टिककर फिर प्रादुर्भूत हुआ है । यह ‘ऋतं च सत्यं’ इत्यादि तीन ऋचाओं में वर्णित है । परमात्मा ही स्वंय अलक्ष्य से प्रकृति हुई । तत्पश्चात् ऊँ कार, एवं बिन्दु-विसर्गनाद द्वारा रूद्र हुआ । ज्ञानस्वरूप से तत्पश्चात् तमः शरीर सत्व गुणावलम्बी पालक ‘विष्णु, पुनः रजोगुणात्मक ‘ब्रह्मा’ हुए । इस प्रकार इन दश महावतारों द्वारा पूर्ववत् ब्रह्म हुआ । अतएव श्रुति में कहा है- “आत्मा वै ब्रह्म”, “ ब्रह्मै वायामात्मा” (आत्मा की ब्रह्म है, ब्रह्म ही आत्मा है) तारागण सहित सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नद, नदी, वृक्षादि, समुद्र तथा मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब अबुद्धिपूर्वक ही यह ब्रह्म (विश्वरूप) हुआ । इसके पश्चात् ब्रहादि समस्त ऋषिगण समेत बुद्धिपूर्वक नाम-रूपाभिमानात्मक जगत् को उस ब्रह्म में कल्पना विवर्तित किया । कोई मनुष्य मन्द अन्धकार में रज्जु को सर्व विवर्तित करें, पुनः उसमें भयादि भाव बढ़ाये, वैसे ही ब्रह्मादि

सभी ऋषियों ने ब्रह्म में जगत को विवर्तित करके, कर्तृव्य भोक्तृत्व इत्यादि भाव बढ़ाये । इस भांति रज्जु में सर्प की तरह ब्रह्म में जगत विवर्तित हुआ । जिस प्रकार रज्जु ही तीनों काल में सत्य वस्तु है, रज्जु में सर्पभ्रान्ति मिथ्या आरोपित है । उसी प्रकार ब्रह्म ही तीनों काल मे सत्य वस्तु है, ब्रह्म में जगत मिथ्या आरोपित है । अतएव इस कल्पित संसार में सत्व, रज तमोगुणों के आभास रूप मोह से मुग्ध होकर कर्ता-भोक्ता होने के अभिमानी होकर तथा माता-पिता, गुरू इत्यादि गुणाभिमानित्व शिक्षण का विश्वास करके, मोह-जाल में अपने आप फंस जाते है । मोहजाल में फंसकर, जब दुःखी होते है, तब परमेश्वर पर दोषारोपण करते है । कोई कर्म को ही दोष कहते है । जीव इस कल्पित जगत् का अभिमानी होकर स्वर्गादि पुण्य-भोग भूमि का तथा पितृलोकादि रजोगुण भोग भुमिकाओं में आता-जाता रहता है । इस आने-जाने से निवृत्त (मोक्ष) होना, बिना तप किए तथा बिना ब्रह्मवेत्ता सद्गुरू के प्रान्त हुए बड़ी ही कठिन है ।

‘‘वह परमात्मा बीज भाव से निराकार है और ब्रह्म (विश्व) भाव से साकार है । निराकारता और साकारता दोनो विचार भुमिका में स्फुरणमात्र है । यदि यह शंका की जाए कि वह परमात्मा निराकार साकार कैसे बना? तो इस पर एक प्रति प्रश्न यह किया जा सकता है , कि मनुष्यादि क्षुद्र प्राणी का केवल एक बिन्दु वीर्य-रज से संयोग पाकर गर्भगत बिना किसी यन्त्राद के नाक, कान, मुख, नेत्र, हाथ, पैर इत्यादि इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण पुर्वक समस्त्त शरीर अपने आप सागोंपागं बनकर चेतनपूर्ण कैसे बन जाता है ? यदि कहा जाए कि ‘स्वयं ही भावना से बन जाता है’ तो फिर वह सच्चिदानन्द, परिपूर्ण, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिान परमात्मा तो केवल चिन्मय परिपूर्ण समुद्रवत् है, वह अपने आप भावनात्मक साकार विश्व और निराकार भी हुआ करता है । यदि चेतनता न हो, तो परमाणु वादियों के परमाणुओं का संयोग-वियोग भी होना सम्भव नही, क्योंकि गति का भाव चेतनता में ही आश्रित है । जैसे बटवृक्ष के एक दाने में परिपूर्ण बटवृक्ष बनने की सामग्री बिना किसी निमित्तादि कारणों के विद्यमान रहती है, वैसे ही परमात्मा रूप बीच में समस्त विश्वमय बनने सामग्री विद्यमान रहती है । चित्कला शक्ति ही उसकी निर्माता होती है । वह चित्त शक्ति परमात्मा में ही विद्यमान है, अतएव सर्वशक्तिपूर्ण वह परमात्मा ही एक अद्वितीय ह । वइ गुण-दोषों से परे हैं । गुण-दोषमय संसार,उस ब्रम्हरूप में ब्रम्हादि ऋषियों ने वैसे ही विवर्तित (कल्पित) किया है, जैसे रज्जु में सर्प । व्याकरण-रीति में ईशऐश्वर्यें इस धातु से वस्च् प्रत्यय होने पर ईश्वर शब्द बनता है । अतः ब्रम्हादि ऋषि ईश्वर कहे जाते है । महर्षि पतजंलि भी पातजंल सूत्र (योगदर्शन) में क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ठटः पुरूष विशेष ईश्वरः इस सूत्र द्वारा ईश्वर के लक्षण बतलाते है । इस ईश्वर को ही दयालु, जगत्पिता, न्यायकारी आदि विशेषण से विशेषित किया जाता है । परमात्मा में विशेष्य-विशेषणता का सर्वदा अभाव है, वह नित्य, शुद्ध, वृद्ध, अजरामृत स्वरूप है । इससे सिद्ध होता है कि ब्रम्हादि ऋषिस्वरूप ईश्वर ही जगत्कर्ता है

। परन्तु परमात्मा तो समस्त विश्व में चित्पूर्ण व्याप्त ही रहता है । यह नही कहा जा सकता कि परमात्मा में निर्गुण-सगुणभाव (आत्मा से ब्रम्ह तथा ब्रम्ह से आत्मा) कितनी बार हुआ होगा, जबकि उसमें काल का भी अनन्तमान है ।

अब प्रश्न होता है कि उस सच्चिदानन्द परमात्मा को क्या आवश्यकता थी ि कवह विश्वरूप हुआ और ब्रम्हादि ऋषिरूप होकर उसने नाम-रूपात्मक जगत् कल्पित किया तथा जाति, गुण कर्म व्यवहारों के निर्माण किया? इस पर यहाँ विचार करना चाहिए कि जैसे हमें स्वंय स्वप्न देखने की इच्छा नही होती किन्तु अनेकानेक पूर्व जन्मान्तरों का अनुभव स्वयं ही उदित होता है । समस्त चित्-स्फूर्तिमात्र में विश्व रचने का सामर्थ्य केवल चिदाश्रयी होने से ही विद्यमान है, तब वह समष्टि भूमातो सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्वाध्यक्ष, सर्वशक्तिमान, परमात्मा है । जो अनेकानेक कल्प कल्पान्तरों का अनुभवी है । वह केवल लीलामात्र का अपने आप, उस चित्त शक्ति के आश्रय से स्वप्नवत् अनुभव करता है और अनेक रूपों में चित्प्रकाश, एकरस विद्यमान होते हुए भी सत्वरजस्तमो गुणात्मिका अपनी माया शक्ति का अवलम्बन करके, कर्ता-भोक्ता इत्यादि का अुनभवी होता है । यही बंधन हो जाता है । यह बंधन तब तक निर्वत्त नही होता, जब तक तपस्या, योगादि-द्वारा बुद्धि को पवित्र करके आचार्य (ब्रम्हवेत्ता गुरू) न प्राप्त किया जाए । आचार्य ने बिना स्ववरूप का बोध होना असम्भव ही है । कहा भी है- तद्विज्ञानार्थ स गुरूमेवाभिगच्छेत् यथा जातान्धस्य रूपं ज्ञानं न भवति तथा सद्गुरू कृपाकटाक्षलेशमत्रेण बिबना तत्वजानं न भवति यह श्रुतिवचन है । जीव आवश्कता अंगीकार करके कार्याभिमानी होता है, इसी से बंधन मे पड़ता है ।किन्तु परमात्मा मे लीलामात्र स्वभाव है, अतः वह सर्वदाशुद्ध है, उसमें बन्ध-मोक्ष दोनों नही है । जैसे प्राणी जीवनकाल मे चेतनापुर्ण तथा ज्ञानपूर्वक शुद्ध रहता हुआ माता-पिता, आचार्यादि से समस्त कर्म, जातीयता, भोगाभोग का विश्वास करके जागरिताभिमानी होता है । वैसे ही परमात्मा सदैव शुद्ध, बुद्ध अजरामृतमय, लीलाकैवल्य, सच्चिदानन्द, ज्ञानपूर्ण, शान्त, चिदधनस्वरूप है । वह चित्त-स्फूर्ति से सद्बम्ह होता है, उसमें अवस्थाओं का सर्वदा अभाव है, वह सदा एकरस शान्त है । अतएव यही सिद्ध होता है कि परमात्मा में लीलामय चिदाश्रय से स्वप्नवत् बिना प्रयोजन के इच्छात्मक चित्स्फूर्ति से विश्व की रचना हुआ करती है ।

"जौ जैसा शुभाशुभ कर्म करता है, उसे वह कर्म वैसा ही शुभाशुभ फल देता है । परमात्मा को फलाफन के विषय में चिन्तन करने की क्या आवश्यकता ? यह तो सब सांसारिक बाते है । अतः कल्पित होने से मिथ्या है । यदि जड़-चेतन के विषय में प्रश्न हो तो जो कुछ भी चक्षुगोचर है, वह सब चेतन ही है, क्योंमि कारण के अुनसार कार्य होता है । जैसे सुवर्ण कारण के व्याप्त रहते ही आभूषण रूप कार्य होता है । इसलिए समस्त आभूषणों में सुवर्ण विद्यमान है ही । जैसे सुवर्ण कारण के व्याप्त रहते ही आभूषण रूप कार्य होता है, इसलिए समस्त आभूषणों में सुवर्ण विद्यमान है ही । इसी प्रकार

परमात्मा रूप कारण से विश्व रूप कार्य होता है । अतएव परिपूर्ण विश्व में परमात्मा ही विद्यमान है चेतनता पूर्ण परमात्मरूप समुद्र में तंरग, फेन, बुद-बुद की तरह 'त्यतसत्' (पंचतत्व पंजीकृत) विश्व होता है । जिसमें ब्रम्हादि ऋषियों ने कर्तव्य-भोक्तत्व रूप नाम रूपात्माक कर्म-विकर्मपूर्ण सुख-दुःख, भोगाभोग पर्याप्त जगत् का विवर्तित किया है । प्रतिकल्प में ऐसा ही होता है । कारणाविरोधेन कार्यप्रतिभासो विवर्तः इस न्याय में कहा है, कि कारण से विरोध रहित कार्य का प्रतिभास (प्रातीतिक दर्शन) हि विवर्त शब्द वाच्य है । जिस प्रकार कारणभूत रज्जुस से विरोध रहित सर्प का प्रतिभास होता है । उसी प्रकार कारणभूत ब्रम्ह में विरोध रहित जगत् विवर्तित है । अतएव परमात्मा सर्वदा कज्पकल्पान्तरों में प्रलय होने पर, अपने आप चित्पूर्ण बीजरूवरूप, शुद्ध, बुद्ध, अभयामृत, एक अद्वितीय वर्तमान रहता है तथा विश्व-प्रादुर्भाव प्रतिभास होता है । उसी प्रकार कारणभूत ब्रम्ह में विरोध रहित जगत् विवर्तित है । अतएव परमात्मा सर्वदा कल्पकल्पान्तरों में प्रलय होने पर, अपने आप चित्पूर्ण बीजस्वरूप, शुद्ध, बुद्ध अभयामृत, एक अद्वितीय वर्तमान रहता है तथा विश्व-प्रादुर्भाव काल में पूर्ववत सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, तारामण्डल सहित रचनात्मक ब्रम्ह (विश्व) होता है । वह रूद्र, विष्णु, ब्रम्हादि ऋषि होकर पूर्ववत् जगत् को विवर्तित करता है । अतएव परमात्मा का ब्रहात्व (विश्वरूपत्व) अबुद्धिपूर्वक स्वाभाविक ही हुआ करता है । माया गुणों को अंगीकार करके ब्रम्हादि ऋषि ही ब्रम्ह में जाति, गुण, कर्म, स्वभावमय जगत की कल्पना (विवर्तित) करते है । और ये रूद्ध, विष्णु, ब्रम्हादि ऋषि ही ब्रम्हादि ऋषि ही जगत् के कर्त्ता, भर्त्ता संहारक ईश्वर हैं । अतः सही सिद्ध होता है कि चेतन ब्रम्ह में जड़ नाम-रूपात्मक जगत् वितर्तित है । तथा जगत कर्त्ता, भर्ता, संहर्ता ब्रम्हा, विष्णु, रूद्ररूप से ईश्वर से ही है, । जगतकर्ता ईश्वर स्वंय सिद्ध है ।

''यदि यह कहा जायें कि जिस समय ईश्वर ने सृष्टि बनायी, उसी समय ईश्वर को इच्छा क्यों हुई? उसके पहले या पीछे क्यों न हुई? किन्तु यह कहना ठीक नही क्योंकि स्वेच्छामय को पूर्ण अधिकार है कि जब चाहे, तब ऐसा करें, परन्तु फिर भी परमात्म का जो अखण्ड नियम है, ठीक समय पर सृष्टि रचना और सृष्टि विनाश हुआ करता है । यही नही कहा जा सकता कि वह कितनी बार ब्रम्हस्वरूप तथा निरालम्ब हो चुका है और कितनी बार आगें होगा । उसका तो स्वभाव ही है और वह नित्य है, अतएव सदैव ऐसा ही होता रहेगा ।

''अवतार धारी को ही ईश्वर कहा जाता है, क्योंकि योगदर्शनकार ने 'क्लेशकर्म विपाकाशये रपरामृष्टः पुरूष विशेष ईश्वरः' इस सूत्र द्वारा क्लेश, कर्म विपाक तथा आशय से रहित पुरूष विशेष को ईश्वर कहा है । इसलिए सनातन धर्मी रूद्र, विष्णु तथा ब्रम्ह को ईश्वर कहते है । वैष्णव चौबीस या दशावतारों को ईश्वर कहते है एवं जैन चौबीस तीर्थशंकरों को ईश्वर कहते है । इसी प्रकार अनेकानेक साम्प्रदायिक भेदोंस

से ईश्वर का मान किया जाता है । जैन कहते है कि जो न द्वेषी है, न रागी है, सदानन्द बीतरागी है, वह सब विषयों का त्यागी है, जो ऐसा है, वह ईश्वर है । यह कहना सगुण रूप देह धारी पुरूष विशेष के लिए हो सकता है । परमात्मा तो निगुर्ण, निरालम्ब, निर्विकार, सच्चिदानन्ददानन्ताजरारामराभयामृत, शुद्ध, बुद्ध, स्वरूप है, उसके यह विशेषण नही हो सकते । इसलिए यह स्वंय सिद्ध है कि परमात्म परमशिव ही एक अद्वितीय है, वह ब्रम्ह है, उसमें भ्रमात्मक जगत् ववर्तित है । वास्तव में जगत् है ही नही, यह सब मिथ्यारोपित भ्रम तप तथा आचार्य की कृपा से दूर होता है ।"

श्री स्वामी जी महाराज के इस विवेचन से ज्ञात होता है कि अद्वैत-तत्व का विरूपण वह कितना मार्मिक, हृदयग्राही, सूक्ष्म और विद्वतापूर्ण करते थे । अद्वैत तत्व निष्प्रश्व, मन एवं वाणी का अविषय है क्योंकि प्राणी का आत्मा ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ नही है । निष्प्रपश्व, परब्रम्ह, परमात्मा में, प्रपश्वरूप जगत का आरोपण करके, पुनः उसका अपवाद कर, शुद्ध रूप प्रतिपादित किया जाता है । यही शैली उपर्यूक्त लेख में देखने को मिलती है । इसका निष्कर्ष है कि जगत् पशु, पक्षी, कीट, पंतग, दानव, मानव, देव आदि सब पर ब्रम्ह स्वरूप ही है । अज्ञान के कारण सभी जीवों मे कर्ता-भोक्ता का भाव उत्पन्न हो गया है । इसी का परिणाम है - सुख-दुःख, जन्म-मरण, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वश होकर, अनेक नीच-उच्च योनियों मे उत्पन्न होकर नाना प्रकार के नारकीय दुःखो को भोगना । जब तप, योग, विवेक और गुरू कृपा-कटाक्ष का संयोग होता है । जब आज्ञानान्धकार दूर होकर स्वप्रकाश ज्ञान सूर्य उदय होता है । उस समय अनुभव होता है कि मैं ब्रम्हात्मा हूँ, तभी जन्म-मरण चक्र और सर्व प्रकार के दुखों से विनिर्मुक्त होकर आत्मानन्द में लीन हो जाता है । यही प्राणी का परम पुरूषार्थ्ज्ञ का ही निरूपण श्री स्वामी जी ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में किया है ।

स्वामी जी निगुर्ण, निराकार, निरिच्छ, परब्रम्ह, परमात्मा होते हुए भी सगुण साकाररूप से विविध प्रकार की लीला करते रहे । भक्तों के अधीन होकर साथ ही उठना, बैठना, सोना, चलना, खाना पीना आदि सभी कार्य करते । जिस प्रकार भी भक्तों की निष्ठा पूर्ण रूप से उनके भगवान् मे स्थिर रहे, वही लीला करते थे । स्वामी जी के अनन्य भक्त भी अन्क अतिरिक्त किसी और में निष्ठा नही रखते । उनकी निष्ठा को स्थिर रखने तथा बढ़ाने के लिए प्रयत्न भी करते । भक्तों को भी अपने इष्टदेव के साथ उठने, बैठना, सोना, चलना, खाना पीना आदि सभी कर्य करते । जिस प्रकार भी भक्तों की निष्ठा पूर्ण रूप से उनके भगवान मे स्थिर रहे, वही लीला करते थे । स्वामी जी के अनन्य भक्त भी उनसे अतिरिक्त किसी और मे ंनिष्ठा नही रखते । उनकी निष्ठा को स्थिर रखने तथा बढ़ाने के लिए प्रयत्न भी करते । भक्तों को भी अपने इष्टदेव के साथ उठने, बैठने, खाने-पीने और भ्रमण में अत्यन्त आनन्द रहता । लगभग सम्वत्

१६८० की एक लीला एक स्मरण हो रहा है । यद्यपि उस समय हमारी आयु छोटी थी, इस कारण उसमें भाग लेने का अवसर नही मिला । तथापि हमारे चाचा और भाई आदि कई लोगों ने जो श्री स्वामी जी के संग थे, इसका वर्णन किया है ।

चित्रकूट-भ्रमण तथा विचित्र लीला

प्रातःकाल लगभग ६-१० बजे थे । श्री स्वामी जी महाराज हमारे निवास स्थान जहानाबाद में आ गए । शनिवार का दिन था, बाजार जाने की तैयारी हो रही थी । कोई भोजन कर रहा था, कोई बैलगाड़ी में सामान लाद रहा था और कोई कपड़े पहन कर जा ही रहा था । घर के सामने शिवालय में श्री वैश्यनाम दबाये प्राणायाम कर रहे थे । स्वामी जी को देखकर सभी चकित हो गए । प्रसन्न होकर सभी ने प्रणाम किया और कोई उनके निकट बैठ गया, कोई पुनः बाजार जाने की तैयारी करने लगा और कोई श्री स्वामी जी के भोजन की व्यवस्था की ओर ध्यान देने लगा । तभी श्री स्वामी जी महाराज ने कहा- ''हम चित्रकूट भ्रमण करने जा रहे है । जिसकी इच्छा हो, वह चले'' । सभी मौन थे । न हाँ कहते बनता था न नहीं । लोगों के मन में था कि अभी तो आए हैं यहाँ रहेगें फिर सोच कर जैसा होगा, वैसा करेगें । अभी बाजार कर लें। मौन देखकर पुनः श्री स्वामी जी ने कहा- ''बाजार या व्यापार तो होते ही रहते है, किन्तु चित्रकूट-भ्रमण का अवसर पुनः न मिलेगा । किसी को भी कुछ ले चलने की आवश्यकता नही केवल कपड़े साथ लेना आवश्यक है ।'' शिशिर ऋतु थी बिना वस्त्र के निर्वाह होना कठिन था।

उसी समय बाजार जाने की तैयारी समाप्त कर दी गई । श्री बालचन्द्र जी वैश्य, श्री विश्वनाथ जी अग्निहोत्री, श्री देवीचरण जी अग्निहोत्री आदि ८-६ व्यक्ति तुरन्त तैयार हो गए । बैलगाड़ी में बैठकर सभी चल दिए । वहां से चलकर पहुंचे 'धमना'। धमना से श्री चन्द्रभूषण चौबे तथा दो व्यक्ति और साथ हो लिए । फिर रेल का टिकट लिया गया । श्री स्वामी जी के पास एक पुस्तक थी । उसमें से पृष्ठ फाड़े और श्री विश्वनाथ जी अग्निहोत्री को देखकर कहा- '' एक टिकट द्वितीय श्रेणी का और सब टिकट तृतीय श्रेणी के ले आओ ।'' सभी व्यक्तियों ने पुस्तक फाड़ते देखा, किन्तु श्री विश्वनाथ जी के हाथ में आते ही पांच-पांच रूपयें के नोट थे । यहीं से लीला आरम्भ हुई । सभी व्यक्ति थे, एकदम मौन । टिकट आए । श्री स्वामी जी द्वितीय श्रेणी में बैठ गए और कहा- ''पीछे के दो डिब्बे छोड़कर, तीसरे डिब्बें में तुम सब लोग बैठ जाओ । वहां सिर्फ एक ब्राहम्ण बैठा माला-जप रहा है और सब डिब्बा खाली है ।'' सभी लोग वहा चले गए, ठीक वैसा ही पाया ।

रेल आयी बांदा स्टेशन । रात्रि हो गई थी, यहां से रेल बदलनी पड़ती है । सब लोग उतरे, स्टेश्न से बाहर आए । एक हलवाई की दुकान में दुग्ध देखा । श्री स्वामी जी ने कहा- ''भाई ! कितना दुग्ध है ।'' हलवाई ने उत्तर दिया- महाराज जी ! एक मन के लगभग होगा ।'' ठीक, सब दुग्ध हमारा रहा'' श्री स्वामी जी ने कहा । हलवाई के यहां से सब बर्तन लिए गए । खीर-पुड़ी और शाक बना । भोजन बनाते खाते रात्रि

२-१/२ बज गए । प्रातः उठकर जो भी भोजन बचा था, वह ब्राहम्णों को खिलाया गया, भिक्षुकों को वितरित किया । फिर वहां से चल दिए ।
'कर्वी' स्टेशन पहुंच गए । कर्वी से पहुंचे सीतापुर । सीतापुर चित्रकुट का मुख्य स्थान है यहां पवित्र मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती है, पण्डो के निवास स्थान है और सभी और दर्शन भ्रमण आदि की सुविधा यहां से रहती है । मन्दाकिनी में स्थान हुए । पांच रूपयें के चने लेकर बानरों के खिलाए गए और सभी पण्डों को दान-दक्षिणा दी गई । यही श्री स्वामी जी के एक भक्त थे । उनके साथ श्री स्वामी जी उनके गृह-चले गए और चलते समय दस रूपये श्री बालचन्द्र वैश्य को दे गए कि इसका मिष्ठान लेकर सब लोग भोजन कर लेना । श्री बालचन्द्र जी ने दो रूपये का मिष्ठान लिया । सभी ने पेट भर भोजन किया । क्योंकि उस समय अच्छा मिष्ठान छः आने सेर मिलता था । जब स्वामी जी को ज्ञात हुआ कि दो रूपये मात्र का मिष्ठान लिया, तब क्रोधित होकर कहने लगे- ''हमारे साथ बनियापन की आवश्यकता नही है जब हमने दस रूपये दिए, तब दो रूपये का मिष्ठान क्यों लिया? हमारे साथ से अभी चले जाओं । ''एकदम सन्नाटा, सभी मौन थे । कहीं और बात न बिगड़ जाए, इसलिए श्री विश्वनाथ जी ने कहा- ''स्वामी जी इनके मन में यह भावना थी, कि श्री स्वामी जी का पैसा खर्च हो रहा है । इसलिए व्यर्थ खर्च न होना चाहिए। किन्तु सब लोगों ने पेट भर भोजन किया और आपके लिए यह मिष्ठान भी रखा है ।'' यह कह कर वस्त्र से खोलकर मिष्ठान श्री स्वामी जी के सम्मुख रख दिया । अब श्री स्वामी जी शान्त हो गए ।

यहाँ बाजार में भोजन बनाने की सुविधा न थी । यहाँ से ३ मील पर 'फटिक शिला' एक स्थान है । वही चल दिय । पहुंच कर देखा, अत्यन्त मनोरम स्थान है । मन्दाकिनी नदी की निर्मल धारा प्रवाहित हो रही थी, तट पर दो फटिक शिला है और समीप ही एक कुटी है वैष्णव साधु की । वनवास काल में भगवान् श्री राम ने सीता-लक्ष्मण के सहित, यही कुछ काल निवास किया था । एक वृक्ष की सघन छाया में सब लोग बैठ गए । 'जब नागा बाबा' (वैष्णव साधु) को पता लगा, तो उन्होंने बड़ी दरियां बिछाने के लिए दी । भोजन का प्रबन्ध भी हुआ ।

सुवर्ण-निर्मात्री एक पत्ती

चित्रकूट में नित्य आध्यात्मिक उपदेश होते । साधु सन्यासियों का समागम और भोजन की विचित्र व्यवस्था होती थी । द्रव्य की कोई कमी न थी । वही पुस्तक पड़ी रहती थी । जब रूपयों की आवश्यकता होती, तब श्री स्वामी के हाथ में पुस्तक आती और उसमें से नवीन नोट निकलते लगते । सब लोगों को आश्चर्य होता था । श्री स्वामी जी के चरित्रों को देखकर, सभी मुग्ध थे । आनन्दातिरेक में यह भी पता न चलजा था, कि कब दिन गया और कब आया । विनोद-वार्ता भी होती थी। इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हो गए ।

एक दिन श्री स्वामी जी ने नागा बाबा से कहा-"बाबा जी ! आप यह कुटी बनवा रहे हैं । इसके लिए धन का प्रबन्ध कहाँ से होता है ?"

भगवन् ! आप सब जानते हैं । आपसे कुछ भी छिपा नहीं हैं । मुझे एक पत्ती का ज्ञान है । रांगा में उस पत्ती का रस निचोड़कर चांदी बना लेता हूँ । चांदी को कर्बी में सराफ के यहां अपने शिष्य से बिकवाता हूँ । उससे जो धन प्राप्त होता है, उसी से कुटी-निर्माण का कार्य चल रहा है ।" नागा बाबा ने सब सत्य बात कर दी ।

"अच्छा तो आप रस-रसायन के भी ज्ञाता है ? किन्तु चांदी बनाने वाली पत्ती की ही ज्ञान है या सुवर्ण बनाने वाली पत्ती का भी ज्ञान है ?" श्री स्वामी जी ने प्रश्न किया ।

"नहीं ! भगवन्, मुझे उसका ज्ञान नहीं है ।"

"हम बतलावेगें । चलो पर्वत पर खोज करें" यह कह कर श्री स्वामी जी उठ पड़े । बाबाजी तथा श्री विश्वनाथ जी अग्निहोत्री साथ हो लिए । श्री स्वामी जी ने कहा - "वह पत्ती बेलपत्र की तरह तीन पत्ती एक में लगीं होती है ।" उससे मिलती जुलती और कई पत्तियां वहां मिली, किन्तु वह न मिली । तब श्री स्वामी जी ने कहा - "यहां वह पत्ती नहीं है । अमरकण्टक पर्वत पर है । वहाँ चलो, अवश्य मिलेगी ।" बाबा जी तैयार हो गए ।

अब नाटक का पर्दा बदला । सब लोगों को वही से अपने-अपने गृह लौटा दिया । बाबा जी संग लेकर चल दिए अमरकण्टक । वहां पर सुवर्ण निमात्री पत्ती मिली बाबा जी को दी और कुछ अपने साथ जहानाबाद भी लाए । श्री विश्वनाथ जी ने कहा - "यदि पुराने तांबे के पैसे हों, तो लाओ" तांबे के पैसे आए, उसमे से बड़े दो पैसे लेकर तेजाब आदि से खूब साफ कराया । फिर एक कटोरी में रखकर, उसी पत्ती का रस निचोड़ा । कटोरी को लोहे की पंसेरी से ढ़क दिया । थोड़ी देर में लाल रंग का धूम निकलने लगा । जब धूम निकलना बंद हुआ, तब पंसेरी को हटवाया । पंसरी इतनी जल रही थी, कि स्पर्श करने से हाथ जल जाता था । दोनों पैसे देखे गए, शुद्ध सुवर्ण के थे । किन्तु

श्री स्वामी जी ने कहा – ''इस सुवर्ण का प्रयोग अपने नही करना चाहिए । धर्मार्थं में प्रयोग किया जा सकता है ? यह कह क रवह सुवर्ण बाबा जी को दे दिया । वह भी साथ ही जहानाबाद आये थे ।

सर्वात्म दृष्टि

इसी प्रकार नित नवीन चरित होते थे । कभी बैतूल के भंयकर वनों मे भ्रमण करते । समीप ही हिंसक सिंह, व्याघ्र आदि इधर-उधर भ्रमण करते थे । न हिंसक जन्तुओं को इनसे भय था, न इनको हिंसक जन्तुओं से । जिसकी सर्वात्म दृष्टि है, अपने से अतिरिक्त, किसी अन्य की सत्ता नही भासती, अन्तःकरण पूर्ण शान्त तथा निर्भय है, उसके समीप जो भी आता है, उसमें भी वही भावना हो जाती है । हिंसक भी अहिंसक हो जाता है । क्योंकि भय तो दूसरे से ही होता है, अपने से नहीं । प्राचीन ऋषि मुनियों के आश्रम में सिंह, गाय, मयूर-जन्मजात स्वाभाविक शत्रु-भाव को त्यागकर, एक साथ विचरण करते थे । यह ऋषि मुनियों के साधन तथा सर्वात्म भाव का प्रभाव था । वैसी ही स्थिति श्री स्वामी जी महाराज की भी थी । सोरही जहानाबाद में अनेक विषधर नाग रहते थे । वही श्री स्वामी जी निर्भया रहते थे और सर्पादि भी निर्भय भ्रमण करते थे । यह था सर्वात्म दृष्टि का प्रभाव ।

यमुना में जल-क्रीड़ा

यमुना-तट पर एक ग्राम है- 'हलदर' । यहां के ब्राहम्ण स्वामी जी के अनन्य भावना रखते थे । एक बार श्री स्वामी जी को यमुना में क्रीड़ा करने की इच्छा हुई । यमुना-तट पर आए । साथ में श्री हीरा लाल पाण्डे, श्री पुत्तन पाण्डे आदि कई सज्जन थे । यमुना के ऊँचे कगार, कोल तथा गड़ढे प्रसिद्ध हैं, जल भी गहरा है । सभी ने स्नान के लिए वस्त्र उतारे । केवट लोगों ने कहा – 'यमुना में बहुत जल है, कोल और गड़ढें भी है । इसलिए किनारे पर ही आप लोग स्थान करिए । 'श्री स्वामी जी पहले ही यमुना जी में उतर पड़े । आगें बढ़ते जा रहे थे । केवट बार-बार मना करते थे । श्री स्वामी जी ने कहा – ''तुम सब लोग चले आओ, थोड़ा ही जल है घुटनों -बराबर ।'' सब लोग भी आगें बढ़कर स्नान करने लगें । सभी ने जानु तक ही जल पाया । श्री स्वामी जी सहित सभी लोग एक-दूसरे को स्पर्श करते हुए खेलने लगे । बड़ी देर तक जमुना में जल क्रीड़ा हुई । कहीं पर घुटनों से अधिक जल न था । न कोई गड़ढ़ा । श्री हीरालाल पाण्डे को शीत-ज्वर आता था । यमुना-स्थ्नान से शीत लगने लगी । उन्होंने स्वामी जी से कही । श्री स्वामी जी ने वही बालुका में एक गड़ढ़ा बनवाया उसमें श्री हीरा लाल पाण्डे को बैठाकर ऊपर बालुका से बन्द कर दिया । कुछ काल में उनके शरीर से पसीना

निकला और सदैव के लिए ज्वर तथा शीत समाप्त हो गई । सब लोग यमुना - तट पर आये और केवटों से कहा "तुम लोग करते थे, कि यमुना गहरी है, घुटनों से अधिक कही भी जल नहीं ।" केवट साश्चर्य मौन थे । तभी श्री स्वामी ने कहा "यह लोग सत्य कहते है यमुना जल अगाध है । इस समय तो क्रीड़ा थी, वह हो गई । अब कभी तुम लोग इस प्रकार न उतरना ।" जल विहार श्री स्वामी को अतीव प्रिय था । यदा-कदा होता ही रहता था ।

गुरू-कृपा का प्रत्यक्ष फल

दलहर के निकट की एक ग्राम है- 'सपई' । वही रहते थे श्री पुत्तन लाल पाण्डे, श्री स्वामी के अनन्य भक्त । जब श्री स्वामी जी सपई आते, उसी समय से पुत्तनलाल जी उनकी सेवा- शुश्रूषा में दन्तचिन्त होकर लगे रहते । न अपने भोजन की चिन्ता, न वस्त्र की और न सोने की चिन्ता थी । एक मात्र अपने स्वामी की सेवा ही चिन्ता थी । प्रेमोन्मत्त थे वह ।

जब श्री स्वामी जी सोरही में होते और परिवार के सदस्य कहते कि श्री स्वामी जी को यहां ले आओ । तो बैलगाड़ी लेकर सोरही पहुंच जाते । प्रमाण कर बैठ जाते, वहीं रहते, किन्तु कभी भी चलने के लिए न कहते थे । जहां श्री स्वामी जी जाते, वहीं सेवा करते हुए स्वंय भी जाते । कभी-कभी तो एक-एक मास तक श्री स्वामी जी के साथ इधर-उधर भ्रमण करते । जब सोरही वापस आते और श्री स्वामी जी कहते- "अब गृह जाओं", तो तुरन्त चल देते । चलने पर श्री स्वामी जी पूछते "कैसे आये थे । क्या हमें बुलाने आए थे ।" हाँ स्वामी जी । बस इतना ही उत्तर होता उनका । तो अभी तक तुमने कहा क्यो नही?" " आप सब जानते है, कहने की क्या आवश्यकता" श्री पुत्तनलाल जी का उत्तर होता । फिर श्री स्वामी जी भी उनके साथ सपई चल देते ।

एक बार श्री स्वामी जी कलकत्ता जा रहे थे । स्टेशन तक आये श्री पुत्तनलाल भी । श्री स्वामी जी ने कहा- "एक टिकट द्वितीय श्रेणी का कलकत्ता का ले आओ ।" "हाँ" कहकर चल दिए । पास में एक पैसा भी नही था । टिकट की खिड़की के सम्मुख खड़े हो गए । टिकट बाबू ने कहा - "कहा का टिकट चाहिए ?" इन्होंने उत्तर दिया - "द्वितीय श्रेणी का कलकत्ता का एक टिकट चाहिए ।" टिकट बाबू उनकी ओर साश्चर्य देख रहा था । उसने कहा - "रूपयें लाओं" । अब बेचारे क्या करते, जेब मे हाथ डाला तो एक नोट उनके हाथ लगा । नोट था सौ रूपयें लाओ" । अब बेचारे क्या करते, जेब मे हाथ डाला तो एक नोट उनके हाथ लगा । नोट था सौ रूपयें का । उन्हे कोई आश्चर्य नही, निर्विकार भाव से नोट दे दिया । बाबू ने टिकट और शेष रूपयें

लौटा दिए । श्री स्वामी जी महाराज सब दूर से देख रहे थे और मुस्कराते थे । टिकट और शेष रूपयें लाकर श्री स्वामी जी के सम्मुख रख दिए । श्री स्वामी जी के पूछने पर कि यह रूपयें कैसे हैं ?'' श्री पुत्तनलाल जी ने कहा– ''हमें कुछ नही मालुम । आपकी महिमा आप ही जाने ।'' श्री स्वामी जी ने वह रूपयें पुत्तनलाल जी को दे दिए । फिर तो पुत्तनलाल जी कुछ भी न करते थे । निरन्तर श्री स्वामी जी का स्मरण करते और जब भी रूपयों की आवश्यकता होती, जेब में मिल जाते थे । उन पर सद्गुरू–कृपा हो गई थी ।

गोकुल चन्द्र का गृह त्याग और सद्गुरू मिलन

पहले जिन श्री चन्द्रदेव का वर्णन आया है । वह लौहार अपने निवास पहुँचे । उन्हें सदैव श्री स्वामी जी की भव्य मूर्ति, आकर्षक व्यक्तिव और स्नेह पूर्ण व्यवहार स्मरण रहता था । उनके भविष्य कथन पर ध्यान था । किन्तु अपनी ना समझी पर पश्चाताप् भी होता था, कि उनके निवास स्थान का पूरा पता क्यों न पूछा । ६ वर्ष तक अपने गृह में रहे । फिर गृह-त्याग, कर निकल पड़े । सन् १९२२ था । मन मे विरक्ति थी और अपने 'प्रभू जी' के पाने की लगन । "कानपुर हां, कानपुर ही तो उन्होंने अपना स्थान बताया था ।" बस, कानपुर के लिए वह चल पड़े । श्री चन्द्रदेव जी अपने मन में कल्पना करते हुए चले जा रहे थे- "प्रभू जी अत्यन्त सम्पन्न है । कानपुर में उनका विशाल मठ होगा, सैकड़ों सेवक होगें और वहां सभी उनको जानते होगें । फिर पाने में क्या कठिनाई? जाते ही चरणों में लिपट जाऊँगा । वह भी सेवक समझ कर स्वीकार कर लेगें । अन्ततः कानपुर आए । यहाँ लोगों से पूछा, किन्तु कुछ भी पता न चला । मानसिक 'मठ' समाप्त हो गया । कानपुर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में भी देखा, पर कहीं भी कुछ पता न चला । स्वरूप को क्षीण रेखा स्मृति-पटल पर थी । किन्तु नाम तथा ग्राम का पता नही ऐसी स्थिति में खोजना कितना कठिन होता है । खोज कभी इधर करते, कभी उधर । दो वर्ष तक यही क्रम चलता रहा ।

निराश हो गए । अब एक स्थान पर निवास करने का निश्चय किया । वह स्थान था यमुना-तट पर एक झोपड़ी बनाई और वही निवास करने लगें । निकट ग्राम के लोग भी आने लगें । एक दिन एक ब्राहम्ण ने भोजन का निमन्त्रण दिया । उसके यहां जाकर देखा-एक चित्र । यह चित्र जो उनके आराध्य देव का है । अपलक दृष्टि से देखते रहे और ब्राहम्ण से पूछा - "यह चित्र किसका है, ये कहां रहते है ? और क्या कभी यहां आते है ?" एक साथ ही तीन प्रश्न कर दिए । उत्तर में हीरालाल पाण्डे ने कहा- "यह चित्र हमारे गुरू श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज का है । यहां से थोड़ी दूर जहानाबाद में निवास स्थान है, आज कल वही हैं । दो-तीन दिन में हम वहां जाने का विचार कर रहे हैं ।" श्री चन्द्रदेव जी ने भी साथ ही चलने को कहा ।

जहानाबाद पहुंचे श्री चन्द्रदेव । श्री स्वामी जी ने देखते ही कहा- "दो वर्ष से खोज रहे हो । खूब परिश्रम किया । अन्ततः पा ली लिया ।" यह सुनते ही साष्टार्ग चरणों मे गिर पड़े और शरण में रखने की प्रार्थना की । सन्यास देने की भी प्रार्थना की । इस पर श्री स्वामी जी ने कहा- "हमने सन्याय चिन्ह दण्ड का परित्याग कर दिया है। इस कारण हम सन्यास -दीक्षा नही दे सकते । सन्यास किसी और से ले लो । मन्त्र तथा मार्ग का उपदेश हम कर देगें ।" श्री चन्द्रदेव ने कहा - "प्रभू जी । हमारे गृह के निकट

धरतल सियालकोट में एक सन्यासी है श्री सन्यासी है श्री कृष्ण भारती जी । वह हमारे सम्बंधी है । क्या उनसे सन्यास दीक्षा ले लें ।" श्री स्वामी जी ने स्वीकृति दे दी ।

वहाँ से चलकर घरतल पहुँचे स्वामी श्री कृष्ण भारती के यहां । उनसे सन्यास दीक्षा ली । योगपट हुआ 'स्वामी केशर भारती' । गुरू के समीप रहने लगें। यदा-कदा जहानाबाद आदि स्थानों में श्री स्वामी जी महाराज के पास आते रहते । यह उनके गुरू जी को पसन्द नही था । एक बार तो उन्होंने स्पष्ट कहा - "वहां आना-जाना बंद कर दो ।" किन्तु श्री स्वामी केशर भारती जी ने यह स्वीकार न किया । तब उन्होंने रोषपूर्वक कहा - "यदि वहां जाना बंद न करोगें, तो यह गद्‌दी तुम्हें न मिलेगी ।

"हमें आपकी गद्‌दी की आवश्यकता नही है" स्वामी केशर भारती ने उत्तर दिया ।

"हमारी आज्ञा का उल्लंघन करता है । वापस कर दे कण्ठा । गैरिक वस्त्र और योग घट आदि सब कुछ । क्रोधित होकर स्वामी श्री कृष्ण भारती ने कहा ।

"यह लीजिए कण्ठा ! गैरिक वस्त्र और योगपट का भी त्याग करता हूँ ।" यह कहकर स्वामी केशर भारती ने सम्मुख रख दिए ।

"यह भी लिखकर दो कि इस गद्‌दी तथा इसकी सम्पत्ति से हमारा कोई सम्बंध नहीं होगा ।

"यह कीजिए" लिखकर दे दिया और वहाँ से चल दिए ।

प्रभु जी का स्मरण करते हुए चल दिए । एक पैसा भी पास नहीं था । किसी प्रकार पहुँचे लाहौर । अनारकली बाजार से जा रहे थे । परिचित एक सज्जन मिले । उन्हें हरिद्वार जाना था, साथ में इन्हें भी ले लिया । हरिद्वार में पांच सौ रूपये भेद किए, फिर विदा किया । अब स्वामी केशर भारती जी पहुंच गए जहानाबाद । देखते ही श्री स्वामी जी ने कहा - "सब कुछ त्याग दिया ?" जैसे वह सब देख रहे थे ।

"हाँ प्रभु जी ! सब त्याग कर, अब आपकी शरण में आया हूँ ।"

"ठीक है, अब तुम्हारा नाम सर्वदानन्दाश्रम है । तुम पंजीब में ही जाकर रहो ।" श्री स्वामी जी महाराज ने आज्ञा दी । वहाँ से आकर 'अकबर राइयाँ' ग्राम में निवास करने लगें । श्री कृष्ण भारती के आश्रम से कुछ ही दूर यह ग्राम है । श्री स्वामी जी महाराज की कृपा-दृष्टि से इनके पास बहुत लोग आते-जाते थे । इनके गुरू के पास लोगों का आना-जाना कम हो गया ।

तब गुरू जी ने इन्हें बुलाया और कण्ठा आदि देने लगें । किन्तु इन्होंने स्वीकार नही किया । सेवा-शुश्रूषा करने का वचन दिया और योग-पट स्वीकार कर लिया । यह सब श्री स्वामी जी महाराज जी कृपा-दृष्टि का फल है ।

नारायण सेठ पर कृपा

श्री स्वामी जी केशर भारती जी ने एक सत्य घटना सुनाई । इसे उन्होंने जहानाबाद के श्री भगवत जी अग्निहोत्री ने सुना । श्री भगदत जी श्री महाराज के कृपापात्र थे और प्रायः नित्य सोरही दर्शनार्थ जाते थे । अप्रैल सन् १९३० अर्थात सम्वत् १९८७ का समय था श्री स्वामी जी कलकत्ता गए थे । इसी अवसर पर एक दुबला पतला व्यक्ति सोरही आया। क्षीणकाय, मलिन वस्त्र, शुधापियासा से पीड़ित था वह, किन्तु मुख क्रान्ति से सम्पन्न प्रतीत होता था । श्रद्धापुर्वक प्रणाम किया और वह बैठ गया । सोंरही में ताला बन्द था । जहानाबाद के कुछ सज्जनों के नाम-पता जानना चाहा, पर उसने कुछ नही बताया । न वह बस्ती मे गया । उसका निश्चय था कि जब तक श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन न कर लूगां, तब तक अन्न-जल-ग्रहण न करूगां, भले ही प्राण चले जाँए । तीन दिन बिना अन्न-जल के वह वहीँ रहा । अन्ततः स्वामी जी कलकत्ता से सीधे सोरही आए । भक्त की भावना का ज्ञान भगवान को होता ही है ।

श्री स्वामी जी को देखकर उसने प्रणाम किया । श्री स्वामी जी ने कहा- "तुम्हारा कहां स्थान है, क्या नाम है और यहां क्यों आये हो?"

"प्रभो ! मेरा नाम नारायण है, जातिका वैश्य हूँ और बम्बई का निवासी हूँ"

"यहाँ आने का क्या प्रयोजन ?" पुनः प्रश्न था श्री स्वामी जी का ।

"भगवन् ! आपकी शरण हूँ .... " नेत्रों से अश्रु गिर पड़े, कण्ठ अवरूद्ध हो गया । चरणों में मस्तक रखकर पड़ गया वह ।

"उठो, अब कोई भय नही है " आश्वासन देते हुए उसे उठाया ।

"क्या बात है? बतलाओ" पुनः श्री स्वामी जी ने कहा ।

"प्रभो ! अतीव दुःखी हूँ । धैर्यपूर्वक सुनिए, तो कहूँ ।

"हाँ-हाँ कहो, सब सुनेगें ।"

मैं धन-धान्य सम्पन्न था । सभी मेरा मान करते थे । रूई का व्यापार होता था । किन्तु सट्टे मे घाटा हुआ । समस्त धन, स्त्री के स्वर्णाभूषण और निवास का गृह भी चला गया, फिर भी घाटा पूर्ण न हुआ । अब बाजार में कोई प्रतिष्ठा नहीं रही, व्यापार भी बंद है तथा परिवार के पालन-पोषण का कोई आधार शेष नही रहा । जीवन-मरण अब आपके हाथ है । आप दयालु तथा सर्वसमर्थ हैं ।" यह कहकर नारायण सेठ चरणों में गिर गया ।

"हानि-लाभ, जीवन-मरण, दुःख-सुख और यश-अपयश सब भाग्यानुसार आते जाते है । इसे कोई बिटज्ञ नही सकता । जाओ पुनः व्यापार करो ।" श्री स्वामी जी ने आश्वासन देते हुए कहा ।

'भगवन् ! आपका कथन सत्य है । किन्तु विधाता के लेख को भी मिटाने की शक्ति आप में है । मैंने ऐसा सुना है ।" नारायण सेठ ने उत्तर दिया ।

“मालूम पड़ता है, तुम्हें किसी ने बहका दिया है । भला ईश्वर के संकल्प को मिथ्या कर सकता है ।”

“यदि किसी मनुष्य ने ऐसा कहा होता, तो सम्भव है मिथ्या होता ।”

“तो तुमसे किसने कहा?” श्री स्वामी जी ने पूछाँ ।

“भगवन् ? आप जानते हुए भी अनजान बन रहे है । अच्छा, सुनिए, जब मेरा सर्वस्य चला गया, जब मैनें ज्योतिषियों की शरण ली । उन्होंने कहा- इस समय साढ़े साती शनि की दशा है । सब कार्य में हानि होगी । इसका उपाय है - भगवान आशुतोष शंकर की उपासना । वह सब कुछ कर सकते हैं । वैद्यनाथधाम में ४० दिन तक भक्तिपुर्वक जप करने से, समस्त संकट निवृत्त हो जायेगें । अब मैं चल दिया वैद्यनाथधाम । वहां नियमपूर्वक ४० दिन जप किया । अन्तिम दिन ऐसा दिखाई पड़ा कि भगवान शंकर सम्मुख खड़े है और कह रहे है - ‘हम कुछ भी नही कर सकते । हाँ, तुम्हारे संकट-निवारण में एक महात्म समर्थ है । वह हैं जहानाबाद में अवधूत स्वामी आत्मानन्द सरस्वती । वह क्रोधी, कठोर, दयालु भी है । मैंने नेत्र खोले, वहाँ कोई न था । वहाँ से मैं चल दिया । ‘जसडीह’ स्टेशन पहुंचा । रेल पर सवार हुआ और बिन्दकी रोड स्टेशन से यहाँ तक पैदल पहुँच गया हूँ ।” नारायण सेठ ने संक्षिप्त अपनी कथा कहीं ।

“यह सब स्वप्न की कल्पित कहानी है और यहां से जाओ ।” श्री स्वामी जी ने कहा ।

“भगवन् ! अब आपकी शरण में आकर कहाँ जाऊँ ?”

हमारे पास व्यर्थ का समय नही है । इस पागल को यहाँ से निकाल दो ।” श्री स्वामी जी ने एक व्यक्ति को आदेश दिया ।

नारायण सेठ सोरही से निकाल दिए गए । किन्तु वह बाहर ही रहे, कही गए नही । दो दिन के पश्चात मोटर-द्वारा इलाहाबाद से दो व्यक्ति श्री स्वामी के दर्शनार्थ आये । जब वह जाने लगें, तब श्री स्वामी जी ने कहा “बाहर एक व्यक्ति है । उसे भी लेते जाओ, इलाहाबाद में उतर देना ।” उन्होनें नारायण सेठ से बैठाना चाहा, किन्तु वह बैठे नहीं । तब स्वंय श्री स्वामी जी ने उनका हाथ पकड़ कर त्यागा हूँ, ऐसा मैंने कही नही सुना । यह विलक्षणता आप में ही देख रहा हूँ । श्री स्वामी जी ने सुना, कुछ क्षण मौन रहे और फिर मोटर से उतार लिया । सोरही के भीतर लाए । एक रत्नों की माला पहना दी गलें में और सहस्र सुवर्ण-मुद्रा देकर कहा- ‘इसे ले जाओ, अब तुम्हारे संकट के दिन समाप्त हो गए । किन्तु यह किसी से कहना नहीं और न कभी फिर यहाँ आना ।”

मकर-मुख से उद्धारा

श्री स्वामी जी को पर्वतीय क्षेत्र में भ्रमण करने में अत्यन्त आनन्द आता था । श्री केदारनाथ तथा बदरीनारायण की यात्रा उन्होंने १४-१५ बार की । एक बार स्वामी केशर भारती तथा खीरी निवासी श्री नन्दपाल सिंह आदि के साथ भ्रमण करते हुए पहुँच गए पुष्कर क्षेत्र । उस समय मेला था वहाँ । ब्रह्मा जी के मन्दिर में निवास किया । यहाँ का प्रमुख तीर्थ है - पुष्कर सरोवर । सरोवर बड़ा और गहरा है । इसमें सैकड़ो मगर थे । कोई स्नान कर रहा था, कोई तट पर पिण्ड-दान करता है और कोई सन्ध्या पूजन कर रहा था । श्री स्वामी जी आदि भी वहाँ का मनोरम दृश्य देख रहे थे । वहाँ के पण्डे आदि मगर से सावधान रहने की चेतावनी भी देते जाते थे । एक स्त्री अपने बालक के साथ घाट पर स्नान कर रही थी । मकर ने मौका पाकर बालक को पकड़ा और सरोवर में ले गया । सहस्त्रों स्त्री पुरूष देख रहे थे । कोई चिल्लाता, कोई दुःख प्रकट करता, और कोई मगर को अपशब्द कह रहा था । बालक की माता की दशा दयनीय थी । रोती, शिर-पीटती तथा सरोवर में कूदने को तत्पर हो रही थी । कुछ लोग उसे पकड़े थे । कोई कर भी क्या सकता था? श्री स्वामी जी ने भी देखा । हृदय में करूणा का संचार हुआ । वैसे ही सरोवर में कूद पड़े । सभी लोग देख रहे थे, अपलक दृष्टि से । वहाँ के निवासी तथा पाण्डों ने कहा - "बच्चा तो समाप्त हो ही गया होगा, इनका बचना भी असम्भव है । क्योंकि मगर एक नही, अनेक है" जैसे भगवत् श्री कृष्ण ने अपने गुरू सान्दीपन मुनि के मृत बालक को यमराज के यहाँ से लाकर दिया था, वैसे ही श्री स्वामी जी महाराज थोड़ी देर में सरोवर से बाहर आए और बालक को उसकी माता दे दिया । फिर तुरन्त वहाँ से चल दिए । यह श्री अलौकिक लीला है ।

प्रेतोद्धार

श्री स्वामी जी के पूर्वाश्रम के घनिष्ट मित्र थे- ठाकुर शंकरबख्श सिंह । सम्पत्ति लोभ से उनके भाई ने उनकी हत्या कर दी थी । श्री स्वामी जी ने सोरही में निन्द्रा में थे । कुछ खड़खड़ाहट का शब्द हुआ । ऐसा भान हुआ कि कोई व्यक्ति है । श्री स्वामी जी ने आवाज दी, कोई उत्तर नहीं मिला । कुछ दिनों के पश्चात पुनः ऐसा ही हुआ । " कौन है?" श्री स्वामी जी ने पूछाँ ।

"क्या मैं आ सकता हूँ ?" धीमा स्वर सुनाई पड़ा ।

"हाँ निर्भय होकर आ सकते हो ।" श्री स्वामी जी ने कहा । वह व्यक्ति आया और दूर से ही प्रणाम कर खड़ा हो गया ।

"क्या तुम शंकरबख्श सिहं हो ?" पहचानते हुए कहा श्री स्वामी जी ने ।

“हाँ” कहा और अपनी करूणा-कथा सुनाई ।” भाई ने मुझे मरवा डाला । अब प्रेत-योनि में हूँ । अतीव कष्ट है, मल-मूत्र ही सेवन करना पड़ रहा है ।” ठाकुर शंकरबख्श सिंह ने कहा ।

“कुछ दिन पूर्व भी तुम आए थे, क्या? उस समय क्यों चले गए थे?”

“हाँ, आया था । किन्तु तब बोलने की शक्ति नही थी । ‘रामतलाई, में एक साधु रहते है, उनके साथ रहने से अब बोल सकता हूँ । आप मेरा प्रेत-योनि से उद्धार कर दीजिए ।” श्री स्वामी जी ने आश्वासन दिया और श्रीमद्भगवत-कथा श्रवण कराना स्वीकार किया ।

दूसरे दिन ठाकुर साहब की धर्मपत्नी श्री पाली सन्देश भेजा कि शीघ्र यहां आओ । वह रथ में बैठकर १०-१५ सेवकों के साथ सोरही आ गई । श्री स्वामी ने ठाकुर शंकरबख्श सिंह की प्रेत-योनि और उनसे वार्तालाप की बातें कही । धर्मपत्नी ने कहा- “चाहे जितना धन व्यय हो, पति-देव को प्रेत-योनि से मुक्त कर दीजिए ।” श्री स्वामी जी के कथनानुसार अन्न, घृत, आदि सामग्री लेकर, कुछ ही दिनों में वह पुनः सोरही आ गई । जहानाबाद के चारों ओर समाचार फैल गया कि श्री स्वमी जी श्रीमद्भागवत् - कथा कहेंगे । दिन निश्चित हुआ । बारह ग्रन्थि वाला बांस गाड़ा गया और श्रीमद्भागवत् कथा आरम्भ हुई ।

दूर-दूर के भक्तगण कथा सुन रहे थे । कुछ भक्त लखनऊ से भी गए थे । साप्ताहिक परायण नहीं था । श्री स्वामी जी महाराज धर्म, भक्ति, वैराग्य तथा ज्ञान का अतीव सुन्दरता से निरूपण करते थे । स्त्री-पुरूष सभी श्रोता नियमपुर्वक कथामृतपान करते थे । एक स्कन्ध पूर्ण होने पर, बांस की एक ग्रन्थि चिटक जाती थी । उसी में प्रेत को आसन दिया था । इस प्रकार बारह स्कन्ध में बारह बांस की ग्रन्थि चिटकी । सभी लोगों ने देखा कि उसमें से क्षीण ज्योति निकली, श्री स्वामी जी के सम्मुख आयी और फिर अदृश्य हो गई । इस प्रकार प्रेत-योनि से ठाकुर शंकरबख्श सिंह का उद्धार हुआ । उनकी धर्मपत्नी ने ब्राहम्णों को भोजन कराया और प्रभूत दक्षिणा देकर, अपने ग्राम चली गई ।

“अकबर राइयाँ” की यात्रा

स्वामी केशव भारती जी यदा-कदा दर्शन के लिए आते थे । उन्होंने अनेक बार प्रार्थना की - “प्रभू जी ! एक बार पंजाब अवश्य चलिए । किन्तु यही उत्तर देते - “वह यवन-देश है, वहाँ का आहार-विहार हमारे अनुकूल नही है” । जब अधिक आग्रह पूर्वक प्रार्थना की और विश्वास दिलया” सब आपके अनुकूल होगा ।” तब स्वीकृति दे दी । पहले लाहौर और फिर पहुँचे गुजरॉनवाला । गुजरॉनवाला से अकबर राइयॉ लगभग १५-१६ मील है । तांगा जाते है, कुछ मार्ग कच्चा भी है । गुजरांनवाला में स्वामी केशर भारती के अनेक शिष्य हैं । उनमें मुख्य हैं - श्री प्रतूलचन्द्र जी शर्मा । पहले वहीं गए । वहाँ से जब लोगों को ज्ञात हुआ कि स्वामी केशर भारती जी के गुरू जी आए है, तब शताधिक भक्त दर्शन के लिए उपस्थित हो गए । उन्होनें अतीव श्रृद्धा-भक्ति का प्रदर्शन किया । अकबर राइयॉ चलने का समय निश्चित हो गया । प्रस्थान करने के समय घनघोर मेघों की छटा छा गई, अन्धकार होने लगा । भीषण वर्षा के लक्षण थे । सभी लोगों ने रोका । किन्तु जो कार्य जिस समय के लिए निश्चित हो जाता, उसमें परिवर्तन करना श्री स्वामी जी के स्वभाव में नही था ।

चल पड़े अकबर राइयां के लिए । साथ में ३०-४० सज्जन चल रहे थे, कुछ साइकिलों पर और कुछ लोग तांगों पर । वर्षा से सभी भयभीत थे, क्योंकि कच्चे मार्ग मे चलना अति कठिन होता है । उसी समय श्री स्वामी जी कहा - “चिन्ता न करों, वर्षा तुम्हारे ऊपर न होगी । सभी निश्चित हो गए । श्री स्वामी जी का तांगा आगे था । उसके पीछे और तांगें और साइकिलें आ रही थी । वर्षा होने लगी । किन्तु सभी को आश्चर्य हो रहा था कि वर्षा की एक बुंद भी उनके ऊपर न पड़ती थी । १०० गज पीछे की ओर वर्षा होती आ रही थी ।

अन्नस्वल्प- भोजन अधिक

तांगा-स्टैण्ड पहुंच गए । वहाँ एक स्त्री रो रही थी । श्री स्वामी जी को दया आई, पूछा – ''क्यों रो रही हो ?'' उसने कहा, मेरे सभी लड़के बड़े होकर मर जाते है । इसकी भी यही दशा हो रही है ।'' लड़के की ओर देखकर पुनः रोने लगी । श्री स्वामी जी ने बालक के शरीर में हाथ फेर कर कहा '' अब यह नही मरेगा और आगें जो भी सन्तान होगीं जीवित रहेगीं । बालक स्वस्थय हो गया । वह स्त्री नित्य दर्शनार्थं आती रही ।

सब लोग अकबर राइयां पहुँच गए । अब वर्षा ने भीषण रूप धारण किया । तांगें वाल वापस नही जा सकें । श्री स्वामी जी ने आज्ञा दी– '' इनके तथा घोड़ों के खाने का भी प्रबन्ध होना चाहिए ।''

''प्रभु जी के लिए भोजन का प्रबन्ध शुद्धतापूर्वक होना चाहिए'' स्वामी केशर भारती जी ने अपने ब्रह्मचारी को आदेश दिया । एक माता ने इस कार्य का भार अपने ऊपर लिया ।

''देखों, हमारे उत्तर प्रदेश में अतीव शुद्धता से भोजन बनता है । चौके में फिर बाहर नहीं निकल जाता । यदि बाहर आना आवश्यक हो, तो हाथ-पैर धोकर पुनः चौके के अन्दर जाते है । भोजन बनाने मे धुले वस्त्र-धारण करते है ।'' श्री स्वामी जी ने समझा दिया ।

''प्रभु जी ! इसी प्रकार भोजन बनेगा'', उस माता ने स्वीकार किया । भोजन बना । श्री स्वामी जी ने एक रोटी खाई और कहा – '' सब को भोजन कराओ।''

''जो आज्ञा'' कहकर, स्वामी केशर भारती ने ब्रह्मचारी से कहा – ''सबको भोजन परोसो ।'' ब्रह्मचारी ने कुछ उत्तर न दिया । तब श्री स्वामी जी महाराज स्वंय चौके में जा पहुंचे और स्वामी केशर भारती से कहा– ''सब लोगों को भोजन के लिए बैठाओं'' । सब लोग बैठ गए । श्री स्वामी जी ने उस माता से कहा – ''तुम लोग थोड़ा-थोड़ा शाक सबको दे दो, रोटियों का प्रबन्ध हमारे ऊपर । शाक दे दिया गया । रोटियां भण्डार से निकाल कर श्री स्वामी दे रहे थे और अन्य लो परोस रहे थे । भोजन ५०-६० व्यक्तियों ने किया । फिर स्वामी केशर भारती और उस माता से कहा – ''तुम लोग भी भोजन कर लो'', वह माता हंस रही थी । दोनो ने भोजन किया । पर उसकी हंसी रूकती न ही थी । अब श्री स्वामी जी बाहर आ गए, तब माता ने देखा चौके मे सब रोटियां रखी हैं । वह यह देखकर और भी हंसने लगीं । इस देखकर स्वामी केशर भारती ने कहा– ''क्या भंग पी रखी है, जो हंसती ही जाती है ।''

''नही, भंग नहीं पी है'' यह कहकर पुनः हंसने लगी ।

"फिर, क्या पागल हो गई हो ?"
"पागल भी नही हूँ। हंसने की बात ही है ।"
"क्या बात है, बता तो सही ।"
"आश्रम में कुछ ढ़ाई-सेर आटा था । उसी की मैंने रोटियां बनाई थी । जितनी रोटियां प्रभु को परोसी गई, शेष रोटियां अभी भी वैसी ही रखी है । किन्तु प्रभु जी ने इतने लोगों को रोटियां खिला दी । पता नही कहाँ से । यही देखकर हंस रही हूँ ।" माता ने उत्तर दिया ।
"ब्रह्मचारी जी, आटा कितना था?" स्वामी केशर भारती जी ने पूछा ।
"लगभग ढ़ाई-तीन सेर होगा" उत्तर दिया ब्रह्मचारी जी ने । यह सुनकर स्वामी केशर भारती जी को भी आश्चर्य हुआ । किन्तु वह श्री स्वामी जी के सामर्थ्य से परिचित थे यह तो खेलमात्र है ।

सब सामान ग्राम -वासियों को दे दिया

अकबर राइयां में श्री स्वामी जी महाराज के लिए कएक प्रथक, आश्रम का निर्माण हुआ । वहाँ लगभग ६ माह तक निवास किया । अन्य ग्राम के कुछ लोगों ने शिकायत की - "महाराज जी । स्वामी केशर भारती सन्यासी है और हमस ब गृहस्थ । हमारे पास पहनने को वस्त्र नही, भरपेट खाने को अन्न नही । और इनके पास बहुमूल्य वस्त्र है । भोजन भी अच्छा से अच्छा करते है । हम गृहस्थों से तो सन्यासी ही अच्छे ।" सब लोगों की वार्ता सुनी । दूसरे दिन स्वामी केशर भारती से कहा- सुना है तुम्हारे पास बहुमूल्य वस्त्रादि है ?"
"प्रभु जी ! जो कुछ भी है, सब आपके सम्मुख है ।"
"सन्यासी को संग्रह नही करना चाहिए । सब सामान भस्म कर दो ।"
"यह लीजिए दियासलाई, लगा दीजिए आग ।" स्वामी केशर भारती दियासलाई देकर, अलग खड़े हो गए ।
"अच्छा, कल बतलायेगें ।" श्री स्वामी जी महाराज ने कहा ।
फिर दूसरे दिन समीप के ग्रामों में सूचना भेज दी कि आश्रम का सब सामान वितरित किया जायेगा । ग्रामीणी एकत्रित होने लगें । । आश्रम का सबसामान बाहर निकाला गया । श्री स्वामी जी महाराज ने ओदश दिया - "जिस वस्तु को लेने की जिसकी इच्छा हो, वह ले लो । अब क्या था, सबने अपी पसन्द की वस्तुयें ले ली । सब सामान बंट गया । सभी लोग प्रसन्न थे । श्री स्वामी जी महाराज ने स्वामी केशर भारती को आज्ञा दी- "अब तुम रोटी मांग कर खाया करो ।" उन्होनें स्वीकार किया ।

वर्षा-तुफान से रक्षा

अन्न की फसल अच्छी हुई थी । किसान प्रसन्तापूर्वक अन्न-काट कर खेतों में एकत्र कर रहे थे । कोई उसे मांड़ कर में लगा रहे थे । विश्राम-काल में किसान श्री स्वामी जी के समीप वार्तालाप कर रहे थे । उसी समय आकाश मेघाच्छन्न हो गया । और तुफान के लक्षण प्रतीत होने लगें । किसान आकाश की ओर देख रहे थे और कहते थे- ''भगवान तुम्हारी क्या इच्छा है?'' श्री स्वामी जी महाराज को भी परिस्थिति का ज्ञान हुआ । उन्होने कहा - तुम लोग चिन्ता न करो । यहां से चारो ओर दस कोश तक कुछ नही होगा ।'' ठीक ऐसा ही हुआ । देस कोस के पश्चात तूफान से अन्न उड़ गया । और शेष बचा वह वर्षा से नहीं हो गया । अकबर राइयां के चारों ओर जैसे कुछ भी नही हुआ था । यह सब भी स्वामी जी महाराज का कृपा-प्रसाद था ।

परकाय-प्रवेश में प्रमाण

अकबर राइयां में नित नवीन लीला होती थी । सभी लोग प्रसन्न थे । वही एक सज्जन ने प्रश्न किया - ''प्रभु जी आपकी आयु कितनी है?''

''डेढ़ सौ वर्ष की'' उत्तर दिया ।

''किन्तु जन्म-तिथि से तो आपकी आयु इतनी नही है'' स्वामी केशर भारती जी ने कहा ।

''वह कैसे प्रभु जी ?'' पुनः प्रश्न किया ।

''यह अत्यन्त गुप्त रहस्य है इस शरीर के पूर्व हम योगी थे, जब शरीर शिथिल होने लगा, तो इस शरी में प्रवेश कर लिया ।'' श्री स्वामी जी ने आयु का रहस्य बताया ।

''क्या एक शरीर से, दूसरे शरीर में प्रवेश किया जा सकता है ?''

''योगी के लिए ऐसा करना असम्भव नहीं है । आद्य श्री शंकराचार्य जी ने राजा अमरूक के शरी में प्रवेश किया था ।'' समाधान किया श्री स्वामी जी ने ।

''प्रभु जी ! आप ठीक कहते है, किन्तु हमें कैसे विश्वास हो ।'' स्वामी केशर भारती ने कहा ।

''क्या प्रत्यक्ष प्रमाण चहते हो ?''

''हाँ, प्रभु जी ।''

''अच्छा, कोई दो फल लाओ ।''

''यह रहे एक माल्टा और एक सन्तरा'' दो फल सम्मुख रख कर, स्वामी केशर भरती ने कहा । सन्तरा छीला और उसकी फांके पृथक कर दी । एक व्यक्ति को छिलका दे दिया, दूसरे को मालटा ।

‘‘दोनो पर हाथ रखे रहो’’ श्री स्वामी जी ने कहा और कुछ माल देखते रहे । फिर कहा – ‘‘अपने-अपने फल देखो । उन्होंने देखा मालटा की फांके सन्तरे के छिलके में थी और मालटा खाली था ।’’ जिस प्रकार मालटा सन्तरे में आ गया, उसी प्रकार योगी एक शरीर से दूसरे में चला जाता है । इसमें कोई सन्देह नही ।’’ श्री स्वामी जी ने कहा । यह यौगिक क्रिया देख कर सभी आश्चर्य चकित थे ।

प्रसाद समान वितरण होना चाहिए

श्री स्वामी जी महाराज गुजरांनवाला में श्री प्रतूलचन्द्र शर्मा के यहां पधारे थे । उनके अनुज श्री देवराज का यज्ञोपवीत-संस्कार था । उत्सव में आमन्त्रित व्यक्तियों का समागम तो था ही, किन्तु श्री स्वामी जी महाराज के आगमन का समाचार सुनकर अनेक भक्त तथा सत्संगी और भी आ गए । एक सज्जन आए और दो ढ़ाई सेर सेव सम्मुख रख दिए । देखा और पूछा- ''यह क्या है ?''

''प्रभु जी ! सेव है'' उसने कहा ।

''हमारा भाग हमें लाओं'' कह कर हाथ फैला दिया । उन सज्जन ने दोनों हाथों से एक सेव उठाकर, श्री स्वामी जी के हाथ पर रख दिया ।

''ठीक, अब सबको एक-एक सेव का प्रसाद मिलना चाहिए । क्योंकि हमारे यहां समान व्यवहार होता है । श्री स्वामी जी ने कहा । वह सज्जन अतीव असमन्जस में पड़ गए । सेव थोड़े थे और उपस्थित व्यक्ति अधिक । किस प्रकार सब को समान दिया जा सकता था ।

''विचारने की आवश्यकता नही, सबको देना आरम्भ करो ।'' आदेश दिया महाराज श्री ने । एक थाली में सेव रखे गए । ऊपर से वस्त्र ढ़क दिया गया । सबको एक-एक सेव बटने लगे । गृह के भीतर बाहर स्त्री, पुरूष, बाल-वृद्ध सभी को समान प्रसाद मिल रहा था । सबको मिला जिसे न मिला हो, वह प्रसाद ले ले'' पुकार भी कर दी । थाली लाकर श्री स्वामी जी के सम्मुख रखी गई । ''तुमने प्रसाद लिया या नही ?'' अभी नही, उत्तर था वितरक सज्जन का । वस्त्र हटाकर देखा, एक सेव था । वह उन्हें प्रसाद में मिल गया । सब लोग चरणों में गिर गए और कहने लगे - ''आपकी महिमा आप ही जानते है, और कोई नही'' ।

एक रोगिणी पर कृपा

एक बार अकबर राइयां में आनन्द निमग्न स्थित थे । ‘सल्लोकी’ ग्राम मी एक माता अपनी षोडशवर्षीया कन्या के साथ वहां आई । दर्शन कर बैठ गई । श्री स्वामी जी की दृष्टि उधर गई । उन्होंने कहा- “इस लड़की के ज्वर है” । लड़की ने उत्तर दिया - “नही, प्रभु जी ! मुझे बुखार नही है ।”

“ब्रह्मचारी जी ! देखों, इसे ज्वर है या हमें भ्रम हो रहा है ।”

“प्रभु जी ! १०३ डिग्री बुखार है” थर्मामीटर लगा कर, ब्रह्मचारी जी ने कहा ।

“प्रभु जी ! इसे डाक्टर टी०वी० बतलाते है । लाहौर के टी०वी० कालेज में भर्ती कराकर औषधि की, किन्तु कोई लाभ नही हुआ । सभी डाक्टर - वैद्य असाध्य रोग बतलाते है । कोई इसे पास तक बैठने नही देता । इसी से इसने कह दिया था कि मुझे बुखार नहीं है । अब यहां दवा के लिए आयी हूँ ।” षोड्शवर्षीया कन्या” लभ्भों की माता ने संक्षिप्त कथा सुना दी ।

“अच्छा, इसे पांच मिनट कोठरी मे बंद कर दो । जब हम कहें, जब निकालना” आदेश दिया श्री स्वामी जी ने । ब्रह्मचारी जी ने कोठरी में बंद कर दिया । जब कहा श्री स्वामी जी ने, तब बाहर निकला । थर्मामीटर लगा कर देखा । एकदम बुखार गायब । श्री स्वामी ने कहा - “अब तुम ठीक हो गई, कोई भी औषधि मत खाना ।” वह चली गई ।

“लो, औषधि खा लो” माता ने कहा ।

“मैं अब ठीक हूँ । प्रभु जी ने मना किया है कि औषधि मत खाना इसलिए मै नही खाऊँगी” । लभ्भों ने उत्तर दिया । किन्तु माता ने बलात् औषधि खिला दी । पुनः ज्वर आ गया । दूसरे दिन घोड़े पर चढ़ कर, फिर अकबर राइयां आयी ।

“बुखार कैसे आया ?” श्री स्वामी जी ने प्रश्न किया ।

“यह माँ से पूछिये” लभ्भो ने खिन्न मन उत्तर दिया ।

“मैने इसे औषधि दे दी थी । उसी समय से बुखार आ गया ।” माता ने कहा ।

“तुम तो स्वयं बड़ी बुद्धिमान हो, वैसा हो, अब यहां क्यो आई ? जाओं यहां से अभी चली जाओ । मना करने पर भी औषधि क्यों दी ।” श्री स्वामी जी ने क्रोध पूर्वक कहा । वह रोने लगी । पुनः लभ्भों की ओर दृष्टि गई । दया का संचार हुआ ।

“ज्वर तुम्हारें वस्त्रों में है, उन्हें उतार दो । लो यह धोती पहनों और जाओ उस कोठरी के अन्दर ।” अपनी धोती देकर, लभ्भो से कहा ।

जब कोठरी से बाहर आई, तो ज्वर फिर एकदम गायब ।” यदि कोई भी औषधि ली, तो फिर ज्वर आ जायेगा ।” उससे कहा । वह चली गई और निरोग हो गई ।

अनेक रोगों की एक ही औषधि-वैद्य-लीला

अब अकबर राइयां से चलना चाहिए- यह विचार मन में हुआ । स्वामी केशर भारती से कहा - "दो दिन यहां और हैं, फिर यहां प्रस्थान होगा । तुम विजया-चूर्ण बना दो ।"

"प्रभु जी ! अभी कहां जाइयेगा । इतनी शीघ्रता में चूर्ण भी तो नही बना सकता ।"

"दो दिन मे चूर्ण क्यों नही बना सकता ?"

"आप देख रहे है प्रातः से रोगी आने लगते है । सन्ध्या तब औषधि आदि बनाते रहने से अवकाश ही नही मिलता ।" स्वामी केशर भारती जी, अभी भी स्वामी जी को और रोकना चाहते थे ।

"किसी प्रकार समय निकाल पर चूर्ण बना दो"

"क्या करें, समय मिलता ही नहीं । इतनी जल्दी चूर्ण कैसे बन सकता है ?"

"अच्छा यदि रोगियों, की देखभाल हम कर ले, तब तो चूर्ण तैयार जो जायेगा ?"

"हाँ, प्रभु जी । तब तैयार हो जायेगा ।" स्वामी केशर भारती जी यही चाहते भी थे । क्योंकि उनके पास उनके ससाध्य रोगी थे । प्रभु जी कृपा-दृष्टि से वह भी स्वस्थ हो जायेगें, यही भावना थी ।

"किन्तु शर्त एक है, यदि दो दिन में चुर्ण तैयार न किया, तो तुम्हारे रोंगी जैसे थे, वैसे ही हो जायेगें । यदि चूर्ण तैयार हो गया, तो जो रोगीं आयेगा वह ठीक हो जायेगा ।" श्री स्वामी जी ने शर्त लगा दी ।

"हमें स्वीकार है" स्वामी केशर भारती ने कहा और अपने ब्रह्मचारी से कहा- "सभी ग्रामीण असाध्य-साध्य रोगियों को सूचना दे दो कि" शीघ्र आ जायें, प्रभु जी दो दिन के लिए वैद्य बने है ।"

प्रातः औषधालय में श्री स्वामी जी वैद्य बनकर बैठ गए । प्रथम रोगी के दर्शन हुए । एक नेत्रहीन महिला के । जिसकी नेत्र-ज्योति कुछ वर्ष पूर्व चली गई थी । देखा और कहा - "शकुन तो अच्छा है" फिर भारती जी की ओर देखा और देखकर कहा - "यह सब तुम्हारी हरकतें ।"

"अच्छा, ब्रह्मचारी जी ! औषधि दो"

"प्रभु जी ! कौन औषधि दे ?" दयालु भारती ने पूछा । उनके सहयोगी थे । आत्मप्रकाश जी ।

"तुम्हारे हाथ में कौन औषधि है ?"

"यह तो महायोगराज गुग्गुल है"

"चार-पांच गोलियां दे दो और कह दो दिन में तीन बार पानी में घिसकर नेत्रों में लगायें ।" श्री स्वामी जी ने आज्ञा दी । दयालु भारती को आश्चर्य हो रहा था कि नेत्रों में महायोग राजगुग्गुल का प्रयोग । उनके हाथ नही उठ रहे थे । वही स्वामी केशर भारती

थे । उन्होंने कहा – ‘‘जब प्रभु जी आज्ञा दे रहे हैं, तो दो’’ । जितने भी रोगी आए, सबको यही औषधि दी गई । जब औषधि समाप्त हो गयी, जब दूसरी औषधि चली । दूसरी दिन नेत्रहीन महिला फिर आई । अब उसके नेत्रों में प्रकाश था ।

सियानकोट में ‘सीता’ नामक एक लड़की आई । उसके मुख में कुष्ठ था, विवाह न होता था । उनेक औषधियाँ करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ । वह भी महायोगराज गुग्गुल से ठीक हो गई । जिने भी रोगी आए, सब निरोग हो गए । यह औषधि का प्रभाव नहीं । श्री स्वामी जी के सत्य संकल्प का प्रभाव था ।

अकबर राहयां से भावपूर्ण विदा

अन्ततः अकबर से गमन का दिन आया । आश्रम में प्रातःकाल से ही नर-नारियों से समूह एकत्रित होने लगें । उधर चलने का तैयारी और इधर सभी चाहते थे कि न जायें । कोई रोकता, कोई विनय करता, कोई रूष्ट होता और कोई रोता था। श्री स्वामी जी भी उनकी भावना के अनुसार किसी को सान्त्वना देते, किसी को समझाते और किसी से पुनः दर्शन देते का वचन देते । किसी से इसी रूप का ध्यान करने के लिए कहते, किसी से कहते 'तुम सदा हमें अपने पास समझना' । सामान तांगे मे रखा गया । श्री स्वामी जी महाराज तांगे में बैठ गए । उस समय का अतीव कारूणिक दृश्य था । किसी माता ने घोड़े की लगाम पकड़ ली, किसी ने तांगे को रोका, किसी ने प्रभु जी के चरण पकड़ लिए और कोई तांगे के आगें लेट गया । भगवान श्रीकृष्ण जी के वृन्दावन से मथुरा गमन के समय जो दशा बृजवासियों की थी, वही दशा यहां पर हो गयी । चारों ओर मानों प्रेमसागर उमड़ रहा था । श्री स्वामी जी भी उससे न बच सकें । नेत्रों से प्रमोश्रु निकल पड़े । कहने लगे - हम नही जानते थे, कि यहां के लोग इतने भावुक है, इतने प्रेमी है । निश्चय यहां के नर-नारी हमें भी अतिशय प्रिय है ।

वही लभ्भों भी थी । वह चरणों में लिपट गई और कहने लगीं- " प्रभु जी" अब कब दर्शन होगें" जब तुम स्मरण करोगी, तभी आ जायेंगें" कहकर वहां से चल दिए ।

आधुनिक बृजवाला

कुछ दिनों पश्चाात लभ्भों चिन्तित रहने लगी, अपने प्रभुजी के दर्शनों के लिए । रात्रि-दिन प्रभु जी के चरित्रों का स्मरण करती, उनका ध्यान करती और सबसे वार्ता करती प्रभु जी की । उसके लिए बस एक ही कार्य था, किसी न किसी रूप मे ंअपने प्रभु जी का स्मरण । वह पूछती – 'प्रभु जी ने कहा था कि जब तुम स्मरण करोगी, तब आ जायेंगें । किन्तु अभी तक आयें नही ।" कोई सान्त्वना देते – "आते ही होगें ।" कोई कहता अब नहीं आयेगें ।" कुछ लोग यह भी कहते – "यह लड़की पागल हो गई है ।" उसकी स्थित प्रमोन्मादिनी थी । वह वृक्षों से पूछती 'प्रभु जी काब आयेंगें ?" दीवालों से तिनकों से और जो भी मिलता, उससे वह प्रश्न करती– "प्रभु जी के आने के लिए कहा था, अभी तक आये नहीं । आवेगें अवश्य, वचन जो दिया था ।" सब लोग उसे पागल समझ रहे थे । और वह थी पागल अपने प्रभु जी के लिए । गृह स्वच्छ रखती, द्वार पर झाड़ू लगाती और मार्ग भी साफ करती, क्योंकि उसके प्रभु जी आयेंगें न । प्रभु जी के लिए गिलास में दूध गर्म कर रखती । देखती दूध खराब ती नही हो गया । शबरी की जो स्थिति भगवान् श्री राम मिलन के लिए और ब्रजागनाओं की व्याकुलता भगवान् श्रीकृष्ण के लिए जैसी थी, वही स्थिति लभ्भो की थी ।

भक्त में लगन दर्शन की उत्सुकता और व्याकुलता जब होता है, तब भगवान् को भी प्रगट होना पड़ता है । शर-शैय्या में पितामह-भीष्म भगवान् का चिन्तन करते है, तो भगवान भी उनका चिन्तन करते है । यही स्थिति लभ्भो और श्री स्वामी जी महाराज की भी थी । "यदि अब दर्शन देने मे विलंब हुआ, तो महान अनर्थ हो सकता है" ऐसा चिार कर चलने की तैयारी की श्री स्वामी जी ने । पत्र लिखा और तार दिया श्री प्रतूलचन्द्र शर्मा को 'लभ्भो से कहा' हम आ रहे है ।" उस समय श्री प्रतुलचन्द्र शर्मा पंजाब नेशनल बैंक लाहौर में काम कर रहे थे । तार पाते ही चल दिए 'सल्लोकी' । पहुंचकर लभ्भो से समाचार कहा । उसका यही उत्तर था– "हाँ, प्रभु जी अवश्य आयेंगें, उन्होनें वचन जो दिया था" श्री स्वामी जी फ्रांटियर मेल से लाहौर पहुचे । लाहौर से गुजरानवाला और गुजरानंवाला से सीधे सल्लोकी लभ्भो मेल से लाहौर पहुंचे । लाहौर से सज्जनों ने बीच मे रूकने के लिए आग्रह किया, किन्तु कही भी रूके नहीं । लभ्भो ने दर्शन किए, वह निर्विकार शान्त हो गए । उसका रखा दूध पान किया, और वहां से चल दिए । लभ्भो ने कहा – 'प्रभु जी' कोई पहचान दीजिए, जिसके सहारे रह सकूँ । तुरन्त पादत्राण उतार कर दे ि दिया और कहा – सबसे श्रेष्ठ आलम्बन यही है ।" कुछ लोगो ने रोका । प्रभु जी भूमि तप रही है, बहुत कड़ी धुप है । नंगे पैरों चलने में बहुत कष्ट होगा । गुजरानवाला से भेज देगें । किन्तु किसी की न सुनी और नंगे पैरो तप्त भूमि में, वहां से चल दिए ।

गंगा जी का आकर्षण

पंजाब से आने पर फिर सोहरी जहानाबाद नही गए । बैतुल मध्य प्रदेश में निवास किया । कानपुर निवासी श्री गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि भक्तों के अनुरोध पर यहां आते रहे । श्री स्वामी जी की इच्छा थी कि अब कही गंगा तब पर निवास करना चाहिए । श्री गंगा प्रसाद जी ने कानपुर नगर से बाहर नवाबगंज मे ‘‘मौनीघाट’’ के समीप स्थान बतलाया और देख लेने की प्रार्थना की । किन्तु उन्होंने कहा - ‘‘कुटी तैयार होने पर देखेगें । यदि पसन्द आई तो निवास करेंगे । श्री गंगाप्रसाद जी ने स्थान लेकर कुटी बनवाई । उसे देखो, स्थान पसन्द आ गया । क्योंकि एकान्त था । वही निवास करने लगें ।

‘‘अवधूत-कुटीर’’ से श्री गंगा जी लगभग दो मील दूर थी । नित्य प्रातः भ्रमण व स्नान करने जाते । यही क्रम एक वर्ष चलता रहा । ग्रीष्म ऋतु और तप्त बालुका में वापस आने का कष्ट होने लगा । वृद्घावस्था थी, शरीर शिथिल होने लगा था । इस कारण गंगा जी का जाना छोड़ दिया और कहा- ‘‘यहद उनको आवश्यकता होगी, तो यही आयेगीं । वर्षा ऋतु में गंगा जी ने उधर से कटना आरम्भ किया, लगभग एक मील इधर आ गई । मौनी घाट में नोन नदी थी । किन्तु पण्डे लोग यात्रियों से उसे उसे गंगा-माता कहकर स्नान-दानदि कराते थे । कुछ लोगों ने इसकी शिकायत श्री स्वामी जी महाराज से की । श्री स्वामी जी ने कुछ सोचा और स्लेट पर यह दोहा लिखा : -

‘अरी नोन तू नो न कर, मिथ्या प्रलपत जीव ।
मौन घाट के प्रथम ही, मिलकर होजा सीव ।

इसे लिखने पर नोन नदी गंगा जी की ओर जाने लगी । कुछ दिनों में गंगा जी में मिल गई । मौनी घाट से नोन नदी चली गई । दूसरे वर्षा ऋतु में गंगा जी बिल्कुल मौनीघाट पर आ गयी । ‘‘अवधूत कुटी’’ के नीचे श्री गंगा जी थी । कुटीर में श्री स्वामी जी थे । वर्षा तक यही क्रम रहा ।

एक वैद्य के रूप क्षय रोग निवारण

सन् १९४५ ज्येष्ठ माह में स्वामी जी अकबर राइंया आये थे जहां पर स्वामी जी ने केशर भारती जी के साथ कई दिनों तक निवास किया । एक दिन स्वामी जी ने केशर भारती जी से कहा, कल तुम मेरे लिए 'गुजरन वाला' जाकर एक सीट बुक कराओ, केशर भारती जी ने इस पर बड़े मन से जाने के लिए जवाब दिया क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में उनके औषधालय का कार्य बाधित हो जाता इसलिए वह जाने के इच्छुक नहीं थे परन्तु भारती जी स्वामी जी के आदेश की अवहेलना कैसे कर सकते थे ।

परन्तु भारती जी के जवाब को सुनकर स्वामी जी बोले कि तुमने सही मन से जवाब नही दिया क्योंकि तुम अपने मरीजों की चिन्ता कर रहे हो । परन्तु तुम्हे जाना होगा और कल मैं तुम्हारे मरीजों के देख लूगां ऐसा स्वामी जी बोले यह सुनकर भारती जी अति प्रसन्न हुए और अगले दिन सुबह छः बजे गुजरन वाला चले गए । प्रातः आठ बजे से मरीज आना शुरू हो गए और केशर भारती को वहां न पाकर मरीज भटकरने लगें और स्वामी जी से कहा हम सभी औषधि लेने आए है केशर भारती जी कहां मिलेंगे इस पर स्वामी जी ने कहा वह आज बाहर गए है आज मैं उनका कार्य देख रहा हूँ तुम सभी एक-एक करके आओ मैं तुम्हें दूगां । इस तरह कतारबद्ध होकर स्वामी जी के पास कई मरीज आए और उन्होंने अपनी तकलीफ उन्हें सुनाई जिस पर स्वामी जी ने उन रोगियों को (संग्रहणी) क्षय रोग, बुखार आदि से पीड़ित) बिना औषधि प्रदान किए सिर्फ आर्शीवाद मात्र से बिल्कुल ठीक कर दिया ।

इस तरह शाम छः बज गए तब स्वामी जी सभी रोगियों के जाने आश्रम के बाहर पेड़ के नीचे अपने कुछ भक्त (अमरनाथ, आत्म प्रकाश, मेला राम आदि) के साथ जब बैठे हुए थे तो उन्होंने देख किस अकबर राइंया की तरफ से एक महिला पीढ़ी लेकर बैठ-बैठ कर पीढ़ी के सहारे रेगंती हुई श्री स्वामी जी की तरफ आ रही है जो बार-बार खांसती थी और क्षय रोग से पीड़ित अत्यन्त दुर्बल अवस्था उसे देखकर स्वामी जी ने अमरनाथ जी से पूछा कि यह कौन है जिसके जवाब में अमरनाथ बोले महाराज यह गांव के एक फकीर सिंह कुम्हार की पत्नी है और यह क्षय रोग से पीड़ित है और प्रभु जी यह कुछ दिनाकं में मर जायेंगी इसके घर वालों ने इसे घर से बाहर डाल दिया है । यहां पर इसे कोई छूता नही और वहीं उसे खाना-पीना दे दिया जाता है । इतने में वह स्वामी जी के समीप आ पहुँची और अपनी झोली फैलाते हुए स्वामी जी को प्रणाम करके बोली दाता आपके सिवाय मेरा इस संसार में कोई नही है मैं रोग से बहुत दुखी हूँ और मर जाऊँगी आप संसार के मालिक है आपने सबको ऊपर (गांव के कई रोगी जिन्हें स्वामी जी ने उस दिन ठीक किया था और उन्हीं से उसे स्वामी जी के बारे में सूचना मिली थी) कृपा की है मुझ गरीब पर भी कृपा कर दीजिए ऐसा कहकर वह रोने लगी स्वामी जी ने कहा कि मैंने तुम्हारा सब रोग ठीक कर दिया तुम अब पीढ़ी

छोड़कर खड़ी हो जाओ और सब तरफ चलकर बताओ कि तुम्हारी तबीयत अब कैसी है । तत्पश्चात् वह खड़ी हुई और अपने हाथ पैर हिला-डुलाकर दो-चार कदम आगें बढ़ी और प्रसन्न मुद्रा में स्वामी जी से कहा कि मैं पूरी तरह ठीक हूँ स्वामी जी बोले तुम पैदल गांव जाओ । वह स्वामी जी के चरणों मे गिर पड़ी और बोली प्रभू यह तो चमत्कार हो गया । इसके बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम बलकार सिंह है जो आज भी जीवित है इस घटना की प्रत्यक्षदर्शी अमरनाथ, मेलाराम, आत्मप्रकाश जी थे जिन्होंने केशर भारती जी को इस घटना के बारे में बताया ।

हरिद्वार यात्रा में प्रोफेसर की माँ का रोग निवारण

एक बार की घटना है कि श्री स्वामी जी अपने कुछ भक्तों के साथ प्रथम श्रेणी से हरिद्वार जा रहे थे । उसी ट्रेन में लखनऊ के विश्वविद्यालय के गणित विषय के प्रोफेसर अपनी माँ के साथ हरिद्वार जा रहे थे वे अपने माँ के साथ स्वामी जी के सामने वाली बर्थ पर बैठे हुए थे । उनकी माँ अत्यन्त दुर्बल थी एवं वेदना भरें स्वरों में कराह रही थी । प्रोफेसर ने स्वामी जी को प्रणाम करते हुए एक सन्त की सेवा में कुछ फल प्रस्तुत किए जिन्हें स्वामी जी ने स्वीकारते हएु उनसे उनकी माँ के विषय मे ंपूछाँ । प्रोफेसर ने बताया ये कई रोगों से पीड़ित है जिसका मैने इलाज कराया परन्तु कोई लाभ न हुआ । अब उनकी इच्छा पर इन्हें हरिद्वार गंगा-स्नान के लिए ले जा रहा हूँ । यह सुनकर श्री स्वामी जी ने उन्ही फलों में से एक फल प्रोफेसर को प्रसाद स्वरूप देते हुए बोले इन्हें यह खिलाओ । प्रोफेसर ने ऐसी ही किया और प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात माता जी काफी स्वस्थ हो गई । इसके पश्चात उन्होंने प्रसन्न भाव से गंगा स्नान किया और कई वर्षो तक जीवित रही इस घटना पर प्रोफेसर साहब ट्रेन में आश्चर्यचकित रह गए किन्तु सिद्वयोगी के लिए यह कृपा अति साधारण है इसके पश्चात प्रोफेसर साहब अवधूत मंदिर दर्शन के लिए आया करते थे ।

देश विभाजन

सन् १९४७ में ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतन्त्रता दी, किन्तु 'पाकिस्तान' बनाकर । पंजीब प्रान्त उत्तरी भाग पाकिस्तान में चला गया । वहाँ के हिन्दुओं की अतीव दयनीय स्थिति थी । धन सम्पत्ति, स्त्री आदि मुसलमान छीन लेते थे । और हिन्दुओं को यमराज के यहां पहुँचाते थे । पुलिस तथा सेना भी मुसलमानों का साथ दे रही थी । अकबर-गुजरांनवाल आदि के भक्त भी वहाँ से चल दिए । जिस मार्ग से आ रहे थे, उसी मार्ग पर कुछ समय पूर्व मुसलमानों ने हजारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतारत दिया था । इसका समाचार इन लोगों को मिला । किन्तु और कोई मार्ग न था, पीछे भी नही लौट सकते थे । सभी ने श्री स्वामी जी महाराज का स्मरण किया और उनके भरोसे चल दिए । मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आई, किन्तु ऐसा भान हो रहा था कि कोई अदृश्य शक्ति उनकी रक्षा कर रही है । सभी भक्त सकुशल लाहौर पहुँचं ओर वहां से भारतीय सेना के संरक्षण में भारत आ गए । अनेक भक्तों ने अपने अनुभव बतलाये कि जब भी कोई संकट की घड़ी उपस्थित होती, तो प्रभू जी का ध्यान करते । उसी समय किसी न किसी रूप में सहायता प्राप्त हो जाती थी ।

भक्त-रक्षण

सन् १९४९ में हिमालय-भ्रमण जी योजना बनी । १ मई कोध कानपुर में श्री स्वामी जी महाराज, स्वामी केशर भारती जी , श्री प्रतुजचन्द्र शर्मा, श्री गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री और जहानाबाद के श्री मुन्नीलाल जी वैश्व, ने प्रस्थान किया । लखनऊ से मैं भी साथ हो लिया । हरिद्वार, ऋषिकेश, मंसूरी, यमुनोत्तरी तथा गंगोत्तरी की यात्रा की । अब केदारनाथ तथा ब्रदीनाथ जाने का विचार था । किन्तु श्री स्वामी जी कहने लगें - "अब चलना कठिन हो रहा है, लौट चलना चाहिए ।" सभी लोग उदास हो गए । तब उन्होंने कहा - "यह गंगोत्तरी का जल है । इससे श्री रामेश्वर जी का अभिषेक करना सर्वोत्तम होगा । अतः वहाँ चले ।" स्वामी केशर भारती जी की प्रबल इच्छा और आग्रह था बद्रीनारायण के दर्शन का । उन्हें बद्रीनारायण भेज दिया और सब लौट पड़े । सेतुबन्ध रामेश्वर में गंगा-जल चढ़ाया और बम्बई होते हुए वापस कानपुर आ गए ।

श्री स्वामी जी ने केदार-बद्री के यात्रा क्यों न की, इसका रहस्य पीछे खूला । अकबर राइयां में श्री स्वामी जी के दो भोई भक्त थे । श्री खैरातीलाल तथा श्री लाहौरी लाल । इनकी माता माया देवी भी श्री स्वामी जी में अनन्य श्रृद्धा करती थी । यह लोग वहाँ से आकर राजस्थान बूँदी राज्य में निवास कर रहे थे । किसी कारणवश श्री लाहौरीलाल जी को पुलिस से फंसा लिया । इनकी माता माया देवी जी श्री स्वामी जी का

स्मरण किया और निश्चय किया - ''जब तक प्रभु जी स्वंय आकर संकट से मुक्त नही करेगें, तब तक अन्न-जल -ग्रहण न करूगीं ।'' वह सर्वज्ञ, भूत, वर्तमान तथा भविष्य के जानने वाले थे । यही कारण था केदार-ब्रदी न जाने का ।

किसी प्रकार श्री स्वामी जी को कोई सूचना नही मिली थी । किन्तु श्री रामेश्वर जी से लौटते ही बूंदी राज्य के लिए चल दिए । वहां पहुंचकर सबको आश्वासन दिया । उनके संकल्पमात्र से ही श्री लाहौरी लाल जी का संकट दूर हो गया । अब सभी लोग कानपुर में आकर निवास करते है । अनन्य भक्त की रक्षा करना भगवान कर स्वभाव ही है ।

महा प्रयाण

श्री स्वामी जी महाराज जन्मजात योगी, ज्ञानी तथा विद्वान रहे । उन्होंने अपने भक्तों में जिसे जिसका अधिकारी समक्षा, वैसा ही उपदेश दिया । ज्ञान, भक्ति तथा सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करने का सदुपेश देते रहे । अपने लिए कभी किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं की । न संग्रह नपरिग्रह । विरक्ति भावना थी । उनमें भक्तों के मध्य में विनोद-वार्ता करते हुए भी, वह अपने आत्मानन्द स्वरूप में ही निमग्न रहते थे । वृद्वावस्था होने पर शरीर शिथिल हो गया । तब उन्होनें शरीर-त्याग का विचार किया । शरीर से उन्हें किंचित मात्र राग न था । पावन माघ-मास था, वैशाख कृष्ण सप्तमी सोमवार सम्वत् २०१० तदनुकूल ७ अप्रैल सन् १९५३ को रात्रि ४ बजे ७६ वर्ष की आयु में पार्थिव शरीर-परित्याग कर दिया । वह ब्रह्मलीन हो गए । क्योंकि कोई कारण शेष नही रहते । अतः ज्ञानी का गमनागमन नहीं होता । वह अपने अखण्ड, अनन्त, ज्ञानस्वरूप में ही प्रतिष्ठित हो गए ।

शिव शिव शिव

आरती

आरती श्री आत्मा नन्द स्वामी ।
श्री हरि घट घट अन्तर्यामी ।।

पूर्ण ब्रह्म अवधूज नमामि ।
सदा वेद मय अमृत वाणी ।।

निर्विकार चैतन्य प्रकाशी ।
भक्ति प्रेम रस के सुख राशि ।।

आरती श्री आत्मा नन्द स्वामी ।
श्री हरि घट घट अन्तर्यामी ।।

अष्टादश पुराण मत ज्ञाता ।
छहों शास्त्र सत् के विख्याता ।।

सद्गुरू नाथ अनन्त नमामि ।
महा शान्ति पद पर विश्रामि ।।

आरती श्री आत्मा नन्द स्वामी ।
श्री हरि घट घट अन्तर्यामी ।।

श्री गुरू पद रज शीश चढ़ाऊँ ।
जीवन जन्मं सफल हव जाऊँ ।।

ऊँ कार जपि प्रभु पद ना ऊँ ।
शिव शिव रटत परम पद पाऊँ ।।

आरती श्री आत्मा नन्द स्वामी ।
श्री हरि घट घट अन्तर्यामी ।।

गुरू महिमा सुर सन्त बखानि ।
अभय परम पद पावहिं प्राणी ।।

आतम अनुभव हृदय प्रकाशा ।
करहिं सदा मुद मंगल वासा ।।

आरती श्री आत्मा नन्द स्वामी ।
श्री हरि घट घट अन्तर्यामी ।।

ॐ अवधूत शिरोमणि ॐ
स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज का
श्री अवधूत मन्दिर